अनेकान्त

सम्पादक–जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

अनेकान्त
वर्ष १२
किरण ७

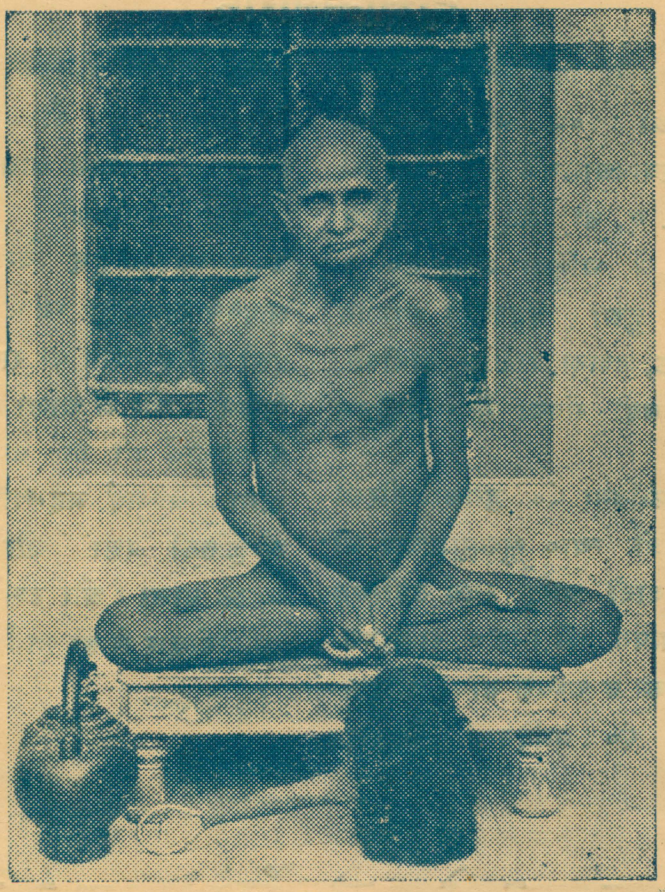

श्री १०८ आचार्य श्री नमिसागरजी का दीक्षा महोत्सव ता० २० दिसम्बर रविवारके दिन डा० कालीदासजी नाग एम० ए० डी० लिट् मेम्बर कौंसिल आफ स्टेट की अध्यक्षतामें सानन्द संम्पन्न हुआ।

दिसम्बर
सन्
१९५३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

साधु-स्तुति (कविता)—बनारसीदास पृष्ठ २१५
तामिल प्रदेशमें जैन धर्मावलम्बी—
श्री प्रो० एम० एस० रामस्वामी आयंगर, एम० ए० २१६
संशोधन
हिन्दी जैन-साहित्यमें तत्त्वज्ञान—
[कुमारी किरणबाला जैन २२३
समयसारके टीकाकार विद्वद्वर रूपचन्दजी—
[अगरचन्दजी नाहटा २२७
अहिंसा और जैन संस्कृतिका प्रसार—
[अनन्त प्रसाद जैन २३१
हमारी तीर्थ यात्राके संस्मरण—
[परमानन्द जैन शास्त्री २३५
साहित्य परिचय और समालोचन—
[परमानन्द जैन शास्त्री २३८

दीक्षा-समारोह

ता २० दिसम्बर शनिवारके दिन वीरसेवा मन्दिर के तत्त्वावधानमें आचार्य श्री १०८ नमिसागरजीका दीक्षा समारोह कलकत्ता विश्वविद्यालयके इतिहासज्ञ श्री डा० कालीदास जी नाग एम. ए. डी. लिट् मेम्बर कौन्सिल आफ स्टेटकी अध्यक्षता में अहिंसा मंदिर नं० १ दरियागंज देहली में सम्पन्न हुआ। देहलीकी स्थानीय जनता के अतिरिक्त हांसी, मेरठ, मवाना, रोहतक, पानीपत, आदि स्थानोंसे भी बहुत बड़ी संख्या में साधर्मीजन पधारे थे।

श्री मोहन लाल जी कठोतिया पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार, पं० दरबारीलाल जी न्या० सुकमालचन्द जी मेरठ, पं० शीलचन्द जी मवाना आदिने स्वयं उपस्थित होकर अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं। ला० राजकृष्णजी ने महाराज श्री के जीवनका व अध्यक्ष डा. कालीदास-नागका परिचय कराया। पं० धर्मदेवजी जैतलीका भाषण अत्यन्त प्रभावक हुआ और उन्होंने बौद्धधर्म और वैदिकधर्मके साथ जैनधर्मकी तुलना करते हुए उसकी महत्ता पर प्रकाश डाला। अध्यक्ष महोदयने भी अपने भाषणमें जैनधर्मकी अहिंसाको विश्व-शान्तिका उपाय बतलाते हुए विश्वका प्रिय धर्म बतलाया। डाक्टर साहबने जनताका ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि इसी प्रसिद्ध स्थान पर राष्ट्रपिता महात्मा गांधीने स्वतंत्रता दिलाई। और मैं आशा करता हूँ कि जैनधर्मके सिद्धांत व आचार्य श्री का उपदेश आत्म-स्वतंत्रताका प्रतीक होगा। आचार्य महाराजने भी अपने भाषणमें जैन संस्कृतिकी रक्षा और जैनइतिहासकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला। और उन्होंने कहा कि सच्चा दीक्षा समारोह साहित्योद्धार से ही सार्थक हो सकता है।

जय कुमार जैन

पुरस्करणीय लेखोंकी समय वृद्धि

अनेकान्त वर्ष १२ किरण २ के पृष्ठ ४७ में प्रकाशित ४२५) रुपयेके दो नये पुरस्कार नामक विज्ञप्तिको १५ वीं पंक्तिमें 'और' के आगे—'दूसरा लेख ६० पृष्ठों या दो हजार पंक्तियोंसे कमका नहीं होना चाहिये', ये वाक्य छपने से छूट गया था, जिसका अभी हालमें पता चला है। अतः विद्वान लेखक उक्त वाक्य छूटा हुआ समझ कर उसकी पूर्ति करते हुए तदनुकूल अपने निबन्धको लिखनेकी कृपा करें। इन निबन्धोंको भेजनेकी अन्तिम अवधि ३१ दिसम्बर तक रक्खी गई थी। किन्तु अब उसमें दो महीने की वृद्धि करदी गई है। अतः फरवरी सन् १९५४ के अन्त तक निबन्ध आ जाना चाहिये।

—प्रकाशक 'अनेकान्त'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम

वार्षिक मूल्य ५)

एक किरण का मूल्य ।।)

सम्पादक—जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

वर्ष १२ किरण ७	वीरसेवामन्दिर, १ दरियागंज, देहली मार्गशिर वीरनि० संवत् २४८०, वि० संवत् २०१०	-दिसम्बर १९५३

* श्री साधु-स्तुति *

ज्ञानको उजागर सहज-सुख सागर,
सुगुन-रत्नाकर विराग-रस भरयो है।
सरनकी रीति हरै मरनको भै न करै,
करनसौं पीठि दे चरन अनुसरयो है॥
धरमको मंडन भरमको विहंडन है,
परम नरम ह्वै कै करमसौं लरयो है।
ऐसो मुनिराज भुविलोकमें विराजमान,
निरखि बनारसी नमसकार करयो है॥

—बनारसीदास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तामिल-प्रदेशोंमें जैनधर्मावलम्बी

(श्री प्रो० एम० एस० रामस्वामी आयंगर, एम० ए०)

श्रीमत्परमगम्भीर। स्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्-त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

भारतीय सभ्यता अनेक प्रकारके तन्तुओंसे मिलकर बनी है। वैदिकोंकी गम्भीर और निर्भीक बुद्धि, जैनकी सर्व व्यापी मनुष्यता, बुद्धका ज्ञानप्रकाश, अरबके पैगम्बर (मुहम्मद साहब) का विकट धार्मिक जोश और संगठन-शक्तिका द्रविडोंकी व्यापारिक प्रतिभा और समयानुसार परिवर्तन शीलता, इनका सबका भारतीय जीवन पर अनुपम प्रभाव पड़ा है और आजतक भी भारतीयोंके विचारों, कार्यों और आकांक्षाओंपर उनका अदृश्य प्रभाव मौजूद है। नये नये राष्ट्रोंका उत्थान और पतन होता है, राजे महाराजे विजय प्राप्त करते हैं और पददलित होते हैं; राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनों तथा संस्थाओंकी उन्नतिके दिन आते हैं और बीत जाते हैं। धार्मिक सम्प्रदायों और विधानोंकी कुछ कालतक अनुयायियोंके हृदयोंमें विस्फूर्ति रहती है। परन्तु इस सतत परिवर्तनकी क्रियाके अन्तर्गत कतिपय चिरस्थायी लक्षण विद्यमान है, जो हमारे और हमारी सन्तानोंकी सर्वदाके लिए पैतृक-सम्पत्ति है। प्रस्तुत लेखमें एक ऐसी जातिके इतिहासको एकत्र करनेका प्रयत्न किया जायेगा, जो अपने समयमें उच्चपद पर विराजमान थी, और इस बात पर भी विचार किया जायेगा कि उस जातिने महती दक्षिण भारतीय सभ्यताकी उन्नतिमें कितना भाग लिया है।

जैन धर्मकी दक्षिण यात्रा—

यह ठीक ठीक निश्चय नहीं किया जासकता कि तामिल प्रदेशोंमें कब जैनधर्मका प्रचार प्रारम्भ हुआ। सुदूर दक्षिण-भारतमें जैन धर्मका इतिहास लिखनेके लिये यथेष्ट सामग्रीका अभाव है। परंतु दिगम्बरोंके दक्षिण जानेसे इस इतिहासका प्रारम्भ होता है। श्रवण बेलगोलाके शिलालेख अब प्रमाणकोटीमें परिणित हो चुके हैं और ११वीं शतीमें देवचन्द्र विरचित 'राजावलिकथे' में वर्णित जैन-इतिहासको अब इतिहासज्ञ विद्वान असत्य नहीं ठहराते। उपर्युक्त दोनों सूत्रोंसे यह ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध भद्रबाहु (श्रुतकेवली) ने यह देखकरकि उज्जैनमें बारहवर्षका एकभयंकर दुर्भिक्ष होने वाला है, अपने १२००० शिष्योंके साथ दक्षिणकी ओर प्रयाण किया। मार्गमें श्रुतकेवलीको ऐसा जान पड़ा कि उनका अन्तसमय निकट है और इसलिए उन्होंने कटवपु नामक देशके पहाड़ पर विश्राम करनेकी आज्ञा दी। यह देश जन, धन, सुवर्ण, अन्न, गाय, भैंस, बकरी, आदिसे सम्पन्न था। तब उन्होंने विशाख मुनिको उपदेश देकर अपने शिष्योंको उसे सौंप दिया और उन्हें चोल और पाण्ड्यदेशोंमें उसके आधीन भेजा 'राजावलकथे' में लिखा है कि विशाखमुनि तामिल प्रदेशोंमें गये, वहाँ पर जैन चैत्यालयोंमें उपासना की और वहांके निवासी जैनियोंको उपदेश दिया। इसका तात्पर्य यह है कि भद्रबाहुके मरण (अर्थात् २९७ ई० पू०) के पूर्वभी जैनी सुदूर दक्षिणमें विद्यमान थे। यद्यपि इस बातका उल्लेख 'राजावलिथे' के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलता और न कोई अन्य प्रमाणही इसके निर्णय करनेके लिये उपलब्ध होता है, परन्तु जब हम इस बातपर विचार करते हैं कि प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदायमें विशेषतः उनके जन्म कालमें प्रचारका भाव बहुत प्रबल होता है, तो शायद यह अनुमान अनुचित न होगाकि जैनधर्मके पूर्वतर प्रचारक पार्श्वनाथके संघ दक्षिणकी ओर अवश्य गये होंगे। इसके अतिरिक्त जैनियोंके हृदयोंमें ऐसे एकांत वास करनेका भाव सर्वदासे चला आया है। जहाँ वे संसारके झंझटोंसे दूर प्रकृतिकी गोदमें परमानन्दकी प्राप्ति कर सकें। अतएव ऐसे स्थानोंकी खोजमें जैनीलोग अवश्य दक्षिणकी ओर निकल गये होंगे। महान प्रांतमें जो अभी जैनमन्दिरों, गुफाओं और वस्तियोंके भग्नावशेष और घुस्स पाये जाते हैं वहीं उनके स्थान रहे होंगे। यह कहाजाता है कि किसी देशका साहित्य उसके निवासियोंके जीवन और व्यवहारोंका चित्र है। इसी सिद्धान्तके अनुसार तामिल-साहित्यकी ग्रन्थावलीसे हमें इस बातका पता लगता है कि जैनियोंने दक्षिण भारतकी सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओंपर कितना प्रभाव डाला है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य प्रमाण—

समस्त तामिल साहित्यको हम तीन युगोंमें विभक्त कर सकते हैं—

(१) संघ काल।

(२) शैवनयनार और वैष्णव अलवार काल।

(३) अर्वाचीन काल।

इन तीन युगोंमें रचित ग्रंथोंसे तामिल-देशमें जैनियोंके जीवन और कार्यका अच्छा पता लगता है।

संघ-काल—

तामिल लेखकोंके अनुसार तीन संघ हुये हैं। प्रथम संघ, मध्यमसंघ, और अन्तिम संघ। वर्तमान ऐतिहासिक अनुसन्धानसे यह ज्ञात हो गया है किन किन समयोंके अन्तर्गत ये तीनों संघ हुए। अन्तिम संघके ४९ कवियोंमेंसे 'बल्लिकरार' ने संघोंका वर्णन किया है। उसके अनुसार प्रसिद्ध वैयाकरण बोलकपियर प्रथम और द्वितीय संघोंका सदस्य था। आन्तरिक और भाषा सम्बन्धी प्रमाणोंके आधार पर अनुमान किया जाता है कि उक्त ब्राह्मण वैयाकरण ईसासे ३५० वर्ष पूर्व विद्यमान होगा। विद्वानोंने द्वितीय संघका काल ईसाकी दूसरी शती निश्चय किया है। अन्तिम संघके समयको आजकल इतिहासज्ञ लोग ५वीं, ६ठी शतीमें निश्चय करते हैं। इस प्रकार सब मतभेदोंपर ध्यान रखते हुए ईसाकी ५वीं शतीके पूर्वसे लेकर ईसाके अनन्तर ५वीं शती तकके कालको हम संघ-काल कह सकते हैं। अब हमें इस बात पर विचार करना है कि इस कालके रचित कौन ग्रन्थ जैनियोंके जीवन और कार्यों पर प्रकाश डालते हैं।

सबसे प्रथम 'बोलकपियर' संघ-कालका आदि लेखक और वैयाकरण है। यदि उसके समयमें जैनीलोग कुछ भी प्रसिद्ध होते तो वह अवश्य उनका उल्लेख करता, परन्तु उसके ग्रंथोंमें जैनियोंका कोई वर्णन नहीं है। शायद उस समय तक जैनी उस देशमें स्थाई रूपसे न बसे होंगे अथवा उनका पूरा ज्ञान उसे न होगा। उसी कालमें रचे गये 'पत्तु पाट्टु' और 'एहुथोगाई' नामक काव्योंमें भी उनका वर्णन नहीं है, यद्यपि उपर्युक्त ग्रन्थोंमें ग्रामीण जीवनका वर्णन है।

कुरल—

दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ महात्मा 'त्रिरुवल्लुवर' रचित कुरल है, जिसका रचना-काल ईसाकी प्रथम शती निश्चय हो चुका है। 'कुरल' के रचयिताके धार्मिक विचारों पर एक प्रसिद्ध सिद्धान्तका जन्म हुआ है। कतिपय विद्वानोंका मत है कि रचयिता जैन धर्मावलम्बी था। ग्रन्थकर्ताने ग्रंथारम्भमें किसीभी वैदिक देवकी वंदना नहीं की है बल्कि उसमें 'कमलगामी' और अष्ट गुण युक्त' आदि शब्दोंका प्रयोग किया है। इन दोनों उल्लेखोंसे यह पता लगता है ग्रन्थ कर्ता जैन धर्मका अनुयायी था। जैनियोंके मतसे उक्त ग्रन्थ 'एल चरियार' नामक एक जैनाचार्यकी रचना है। और तामिल काव्य 'नीलकेशी' की जैनी भाष्यकार समय-दिवाकर मुनि' 'कुरल' को अपना पूज्य-ग्रन्थ कहता है। यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो इसका यही परिणाम निकलता है कि यदि पहले नहीं तो कमसे कम ईसाकी पहली शतीमें जैनी लोग सुदूर दक्षिणमें पहुंचे थे और वहांकी देश भाषामें उन्होंने अपने धर्मका प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार ईसाके अनन्तर प्रथम दो शतियोंमें तामिल प्रदेशोंमें एक नये मतका प्रचार हुआ, जो बाह्याडम्बरोंसे रहित और नैतिक सिद्धान्त होनेके कारण द्राविडियोंके लिये मनो मुग्धकारी हुआ। आगे चलकर इस धर्मने दक्षिण भारत पर बहुत प्रभाव डाला। देशी भाषाओंकी उन्नति करते हुए जैनियोंने दाक्षिणात्योंमें आर्य विचारों और आर्य-विद्याका अपूर्व प्रचार किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि द्राविडी साहित्यने उत्तर भारतसे प्राप्त नवीन संदेशकी घोषणा की। मिस्टर फ्रेजरने अपने "भारतके साहित्यिक इतिहास" ("A literary History of India") नामक पुस्तकमें लिखा है कि 'यह जैनियों ही के प्रयत्नोंका फल था कि दक्षिणमें नये आदर्शों नए साहित्य और नए भावोंका संचार हुआ।' उस समयके द्राविडोंकी उपासनाके विधानों पर विचार करनेसे यह अच्छी तरहसे समझमें आ जायगा कि जैनधर्मने उस देशमें जड़ कैसे जमाई। द्राविडोंने अनोखी सभ्यताकी उत्पत्तिकी थी। स्वर्गीय श्री कनक सवाई पिल्लेके अनुसार, उनके धर्ममें बलिदान, भविष्यवाणी और आनन्दोत्पादक नृत्य प्रधान कार्य थे। जब ब्राह्मणोंके प्रथमदलने दक्षिणमें प्रवेश किया और मदुरा या अन्य नगरोंमें वास किया तो उन्होंने इन आचारोंका विरोध किया और अपनी वर्णव्यवस्था और संस्कारोंका उनमें प्रचार करना चाहा, परन्तु वहांके निवासियोंने इसका घोर विरोध किया। उस समय वर्णव्यव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्था पूर्णरूपसे परिपुष्ट और संगठित नहीं हो पाई थी। परन्तु जैनियोंकी उपासना, आदिके विधान ब्राह्मणोंकी अपेक्षा सीदे साधे ढंगके थे और उनके कतिपय सिद्धान्त सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट थे। इस लिये द्राविडोंने उन्हें पसंद किया और उनको अपने मध्यमें स्थान दिया यहाँ तक कि अपने धार्मिक जीवनमें उन्हें अत्यन्त आदर और विश्वास-का स्थान प्रदान किया।

कुरलोत्तरकाल—

कुरलके अनन्तर युगमें प्रधानतः जैनियोंकी संरक्षतामें तामिल-साहित्य अपने विकासकी चरमसीमा तक पहुँचा। तामिल साहित्यकी उन्नतिका समय वह सर्वश्रेष्ठ काल था। वह जैनियोंकी भी विद्या तथा प्रतिभाका समय था, यद्यपि राजनैतिक-सामर्थ्यका समय अभी नहीं आया था। इसी समय (द्वितीय शती) चिर-स्मरणीय शिलप्पदि-कारम्' नामक काव्यकी रचना हुई। इसका कर्त्ता चेर राजा सेंगुत्तवनका भाई 'इलंगोवदिगाल' था। इस ग्रन्थमें जैन सिद्धान्तों, उपदेशों और जैनसमाजके विद्यालयों और आचारों आदिका विस्तृत वर्णन है। इससे यह निःस-न्देह सिद्ध है कि उस समय तक अनेक द्राविडोंने जैन-धर्मको स्वीकार कर लिया था।

ईसाकी तीसरी और चौथी शतियोंमें तामिलदेशमें जैन-धर्मकी दशा जाननेके लिये हमारे पास काफी सामग्री नहीं है। परन्तु इस बातके यथेष्ट प्रमाण प्रस्तुत हैं कि ५वीं शतीके प्रारम्भमें जैनियोंने अपने धर्मप्रचारके लिये बड़ाही उत्साहपूर्ण कार्य किया।

'दिगम्बर दर्शन' (दर्शन सार) नामक एक जैन ग्रंथमें इस विषयका एक उपयोगी प्रमाण मिलता है। उक्त ग्रन्थ में लिखा है कि सम्वत् ५२६ विक्रमी (४७० ईसवीं) में पूज्यपादके एक शिष्य वज्रनन्दी द्वारा दक्षिण मथुरामें एक द्रविड-संघकी रचना हुई और यह भी लिखा है कि उक्त-संघ दिगम्बर जैनियोंका था जो दक्षिणमें अपना धर्मप्रचार करने आये थे।

यह निश्चय है कि पाण्ड्य राजाओंने उन्हें सब प्रकार से अपनाया। लगभग इसी समय प्रसिद्ध 'नलदियार' नामक ग्रन्थकी रचना हुई और ठीक इसी समयमें ब्राह्मणों और जैनियोंमें प्रतिस्पर्धाकी मात्रा उत्पन्न हुई।

इस प्रकार इस संघकालमें रचित ग्रन्थोंके आधार पर निम्नलिखित विवरण तामिल देश स्थित जैनियोंका मिलता है।

(१) थोलकपियरके समयमें जो ईसाके ३५० वर्ष पूर्व विद्यमान था, कदाचित् जैनी सुदूर दक्षिण देशोंमें न पहुँच पाये हों।

(२) जैनियोंने सुदूर दक्षिणमें ईसाके अनन्तर प्रथम शतीमें प्रवेश किया हो।

(३) ईसाकी दूसरी और तीसरी शतियोंमें, जिसे तामिल-साहित्यका सर्वोत्तमकाल कहते हैं, जैनियोंने भी अनुपम उन्नति की थी।

४) ईसाकी पाँचवीं और छटीं शतियोंमें जैन धर्म इतना उन्नत और प्रभावयुक्त हो चुका था कि वह पाण्ड्य-राज्यका राजधर्म हो गया था।

शैव-नयनार और वैष्णव-अलवार काल—

इस कालमें वैदिकधर्मकी विशिष्ट उन्नति होनेके कारण बौद्ध और जैनधर्मोंका आसन डगमगा गया था। सम्भव है कि जैनधर्मके सिद्धान्तोंका द्राविडी विचारोंके साथ मिश्रण होनेसे एक ऐसा विचित्र दुरंगा मत बन गया हो जिसपर चतुर ब्राह्मण आचार्योंने अपनी बाण-वर्षा की होगी। कट्टर अजैन राजाओंके आदेशानुसार, सम्भव है राजकर्म-चारियोंने धार्मिक अत्याचार भी किये हों।

किसी मतका प्रचार और उसकी उन्नति विशेषतः शासकोंकी सहायता पर निर्भर है। जब उनकी सहायता का द्वार बन्द हो जाता है तो अनेक पुरुष उस मतसे अपना सम्बन्ध तोड़ लेते हैं। पल्लव और पाण्ड्य-सम्राज्योंमें जैन-धर्मकी भी ठीक यही दशा हुई थी।

इस काल (५वीं शतीके उपरान्त के जैनियोंका वृत्तांत सेक्किलार नामक लेखकके ग्रन्थ 'पेरिय पुराणम्' में मिलता है। उक्त पुस्तकमें शैवनयनार और अन्दारनम्बीके जीवनका वर्णन है, जिन्होंने शैव गान और स्तोत्रोंकी रचना की है।

तिरुज्ञान—संभाण्डकी जीवनी पढ़ते हुए एक उपयोगी ऐतिहासिक बात ज्ञात होती है कि उसने जैनधर्मावलम्बी कुन्-पाण्डको शैवमतानुयायी किया। यह बात ध्यान देने योग्य है। क्योंकि इस घटनाके अनन्तर पाण्ड्य नृपति जैनधर्मके अनुयायी नहीं रहे। इसके अतिरिक्त जैनी-लोगोंके प्रति ऐसी निष्ठुरता और निर्दयताका व्यवहार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया गया, जैसा कि दक्षिण भारतके इतिहासमें और कभी नहीं हुआ। सभाण्डके घृणाजनक भजनोंसे, जिनके प्रत्येक दशवें पद्यमें जैनधर्मकी भर्त्सना थी, यह स्पष्ट हो जाता है कि वैमनस्यकी मात्रा कितनी बढ़ी हुई थी।

अतएव कुन-पाण्ड्यका समय ऐतिहासिक दृष्टिसे ध्यान रखने योग्य है, क्योंकि उसी समयसे दक्षिण भारतमें जैनधर्मकी अवनति प्रारम्भ होती है। मि० टेलरके अनुसार कुन-पाण्ड्यका समय १३२० ईसवीके लगभग है, परन्तु डा० काल्डवेल १२६२ ईसवी बताते हैं। परन्तु शिलालेखोंसे इस प्रश्नका निश्चय हो गया है। स्वर्गीय श्री वेंकटैयाने यह अनुसन्धान किया था कि सन् ६२४ ई० में पल्लवराज नरसिंह वर्मा प्रथमने 'वातापी' का विनाश किया इसके आधार प तिरुज्ञान संभाण्डका समय ७ वीं शतीके मध्यमें निश्चित किया जा सकता है। क्योंकि संभाण्ड एक दूसरे जैनाचार्य 'तिरुनत्रुकरसारं' अथवा लोक प्रसिद्ध अय्यारका समकालीन था परन्तु संभाण्ड 'अय्यर' से कुछ छोटा था। और अय्यरने नरसिंहवर्माके पुत्रको जैनीसे शैव बनाया था। स्वयं अय्यर पहले जैनधर्मकी शरणमें आया था और उसने अपने जीवनका पूर्वभाग प्रसिद्ध जैनविद्याके तिरुप्पदिरिप्पुलियारके विहारोंमें व्यतीत किया था इस प्रकार प्रसिद्ध ब्राह्मण आचार्य संभाण्ड और अय्यारके प्रयत्नोंसे, जिन्होंने कुछ समय पश्चात् — अपने स्वामी तिलकवर्थिको प्रसन्न करनेके हेतु शैवमतकी दीक्षा ले ली थी, पाण्ड्य और पल्लव राज्योंमें जैनधर्मकी उन्नतिको बड़ा धक्का पहुँचा। इस धार्मिक संग्राममें शैवोंको वैष्णव अलवारोंसे विशेषकर 'तिरुमलिसैप्पिरन'—और 'तिरूमंगई' अलवारसे बहुत सहायता मिली जिनके भजनों और गीतोंमें जैनमत पर घोर कटाक्ष हैं। इस प्रकार तामिल देशोंमें नम्मलवारके समय (१० वीं शती-ई०) जैनधर्मका आस्तित्व सङ्कटमय रहा।

अर्वाचीन काल—

नम्मलवारके अनन्तर हिन्दू-धर्मके उन्नायक प्रसिद्ध आचार्योंका समय है। सबसे प्रथम शंकराचार्य हुए जिनका उत्तरकी ओर ध्यान गया। इससे यह प्रगट है कि दक्षिण-भारतमें उनके समय तक जैनधर्मकी पूर्ण अवनति हो चुकी थी। तथा जब उन्हें कष्ट मिला तो वे प्रसिद्ध जैनस्थानों श्रवणबेलगोल (मैसूर) टिण्डिवनम्—(दक्षिण अरकाट) आदिमें जा बसे। कुछने गंग राजाओंकी शरण ली, जिन्होंने उनका रक्षण तथा पालन किया यद्यपि अब जैनियोंका राजनैतिक प्रभाव नहीं रहा, और उन्हें सब ओरसे पल्लव पाण्ड्य और चोल राज्यवाले तंग करते थे, तथापि विद्यामें उनकी प्रभुता न्यून नहीं हुई। 'चिन्तामणि' नामक प्रसिद्ध महाकाव्यकी रचना तिरुत्तकतेवर द्वारा नवीं शतीमें हुई थी। प्रसिद्ध तामिल-वैयाकरण पविर्नान्दजैनने अपने 'नन्नूल' की रचना १२२५ ई० में की। इन ग्रन्थोंके अध्ययनसे पता लगता है कि जैनी लोग विशेषतः मैलापुर, निदुम्बई (?) थिपंगुदी (तिरुवलूरके निकट एक ग्राम) और टिण्डीवनम्में निवास करते थे

अन्तिम आचार्य श्री माधवाचार्यके जीवनकालमें मुसलमानोंने दक्षिण पर विजय प्राप्त की, जिसका परिणाम यह हुआ कि दक्षिणमें साहित्यिक, मानसिक और धार्मिक उन्नतिको बड़ा धक्का पहुँचा और मूर्तिविध्वंसकोंके अत्याचारोंमें अन्य मतालम्बियोंके साथ जैनियोंको भी कष्ट मिला। उस समय जैनियोंकी दशाका वर्णन करते हुये श्रीयुत वार्थ सा० लिखते हैं कि 'मुसलमान साम्राज्य तक जैनमतका कुछ कुछ प्रचार रहा। किन्तु मुसलिम साम्राज्यका प्रभाव यह पड़ा कि हिन्दू-धर्मका प्रचार रुक गया, और यद्यपि उसके कारण समस्त राष्ट्रकी धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक अवस्था अस्तव्यस्त हो गयी। तथापि साधारण अल्प संस्थाओं, समाजों और मतोंकी रक्षा हुई।

दक्षिण भारतमें जैनधर्मकी उन्नति और अवनतिके इस साधारण वर्णनका यह उद्देश सुदूर दक्षिण भारतमें प्रसिद्ध जैनधर्मके इतिहासका वर्णन नहीं है। ऐसे इतिहास लिखनेके लिए यथेष्ट सामग्रीका अभाव है। उत्तरकी भांति दक्षिण भारतके भी साहित्यमें राजनैतिक इतिहासका बहुत कम उल्लेख है।

हमें जो कुछ ज्ञान उस समयके जैन इतिहासका है वह अधिकतर पुरातत्ववेत्ताओं और यात्रियोंके लेखोंसे प्राप्त हुआ है, जो प्रायः यूरोपियन हैं। इसके अतिरिक्त वैदिक ग्रन्थोंसे भी जैन इतिहासका कुछ पता लगता है, परन्तु वे जैनियोंका वर्णन सम्भवतः पक्षपातके साथ करते हैं।

इस लेखका यह उद्देश नहीं है कि जैन समाजके आचार विचारों और प्रथाओंका वर्णन किया जाय और न एक लेखमें जैन गृह-निर्माण-कला, आदिका ही वर्णन हो

सकता है परन्तु इस लेखमें इस प्रश्न पर विचार करनेका प्रयत्न किया गया है कि जैन धर्मके चिर सम्पर्कसे हिन्दू समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है ।

जैनी लोग बड़े विद्वान और ग्रंथोंके रचयिता थे । वे साहित्य और कलाके प्रेमी थे । जैनियोंकी तामिल-सेवा तामिल देश वासियोंके लिये अमूल्य है । तामिल-भाषामें संस्कृतके शब्दोंका उपयोग पहले पहल सबसे अधिक जैनियोंने ही किया । उन्होंने संस्कृत शब्दोंको तामिल भाषामें उच्चारणकी सुगमताकी दृष्टिसे यथेष्ट रूपमें बदल डाला । कन्नड साहित्यकी उन्नतिमें जैनियोंका उत्तम योग है । वास्तवमें वे ही इसके जन्मदाता थे । 'बारहवीं शतीके मध्य तक उसमें जैनियों हीकी संपत्ति थी और उसके अनंतर बहुत समय तक जैनियों ही की प्रधानता रही । सर्व प्राचीन और बहुतसे प्रसिद्ध कन्नड ग्रन्थ जैनियोंही के रचे हैं । (लुइस राइस) श्रीमान् पादरी एफ-किटेल कहते हैं कि जैनियोंने केवल धार्मिक भाव-नाओंसे नहीं किन्तु साहित्य-प्रेमके विचारसे भी कन्नड भाषाकी बहुत सेवा की है और उक्त भाषामें अनेक संस्कृत शब्दोंका अनुवाद किया है ।

अहिंसाके उच्च आदर्शका वैदिक संस्कारों पर प्रभाव पड़ा है जैन उपदेशोंके कारण ब्राह्मणोंने जीव-बलि-प्रदान-को बिल्कुल बन्द कर दिया और यज्ञोंमें जीवित पशुओंके स्थानमें आटेकी बनी मूर्तियाँ काममें लायी जाने लगीं ।

दक्षिण भारतमें मूर्तिपूजा और देवमन्दिर-निर्माणकी प्रचुरताका भी कारण जैन धर्मका प्रभाव है । शैव-मंदिरोंमें महात्माओंकी पूजाका विधान जैनियों ही का अनुकरण है । द्राविड़ोंकी नैतिक एवं मानसिक उन्नतिका मुख्य कारण पाठशालाओंका स्थापन था, जिनका उद्देश्य जैन विद्यालयोंके प्रचारक मण्डलोंको रोकना था ।

उपसंहार—

मद्रास प्रान्तमें जैन समाजकी वर्तमान दशा पर भी एक दो शब्द कहना उचित होगा । गत मनुष्य-गणनाके अनुसार सब मिलाकर २७००० जैनी इस प्रान्तमें थे, जिनमेंसे दक्षिण कनारा, उत्तर और दक्षिण कर्नाटकके जिलोंमें २३००० हैं । इनमेंसे अधिकतर इधर-उधर फैले हुए हैं और गरीब किसान और अशिक्षित हैं । उन्हें अपने पूर्वजोंके अनुपम इतिहासका तनिकभी बोध नहीं है । उनके उत्तर भारत वाले भाई जो आदिम जैनधर्मके अवशिष्ट चिन्ह हैं, उनसे अपेक्षा कृत अच्छा जीवन व्यतीत करते हैं उनमेंसे अधिकांश धनवान् व्यापारी और महाजन हैं । दक्षिण भारतमें जैनियोंकी विनष्ट प्रतिमाएं, परित्यक्त गुफाएँ और भग्न मन्दिर इस बातके स्मारक हैं कि प्राचीन कालमें जैनसमाजका वहां कितना विशाल विस्तार था और किस प्रकार ब्राह्मणोंकी स्पर्धाने उनको मृत प्राय कर दिया । जैन समाज विस्मृतिके अंचलमें लुप्त हो गया, उसके सिद्धान्तों पर गहरी चोट लगी, परंतु दक्षिणमें जैन-धर्म और वैदिकधर्मके मध्य जो कराल संग्राम और रक्त-पात हुआ वह मथुरामें मीनाक्षी मंदिरके स्वर्ण कुमुद सरो-वरके मण्डपकी दीवारों पर अङ्कित है तथा चित्रोंके देखनेसे अबभी स्मरण हो आता है ।

इन चित्रोंमें जैनियोंके विकराल-शत्रु तिरुज्ञान संभाण्ड के द्वारा जैनियोंके प्रति अत्याचारों और रोमांचकारी यात-नाओंका चित्रण है । इस रौद्र काण्डका यहीं अंत नहीं है । मदुयूरा मंदिरके बारह वार्षिक त्यौहारोंमेंसे पांचमें यह हृदय विदारक दृश्य प्रतिवर्ष दिखलाया जाता है । यह सोचकर शोक होता है कि एकांत और जनशून्य स्थानोंमें कतिपय जैन महात्माओं और जैनधर्मकी वेदियों पर बलिदान हुए महापुरुषोंकी मूर्तियों और जन श्रुतियोंके अतिरिक्त, दक्षिण भारतमें अब जैनमतावलम्बियोंके उच्च उद्देश्यों, सर्वाङ्ग-व्यापी उत्साही और राजनैतिक प्रभावके प्रमाण स्वरूप कोई अन्य चिन्ह विद्यमान नहीं है ।

(वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ से)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संशोधन

मुख्तार श्री जुगलकिशोर जी की अनुपस्थितिमें उनका "समयसारकी' १५वीं गाथा श्रीकानजी स्वामी" नामक लेख गत किरणमें प्रेसादिकी असावधानीके कारण कुछ अशुद्ध छप गया है 'जिसका भारी खेद है'। अतः विराम चिन्हों, हाइफनों तथा विन्दु विसर्गादिकी ऐसी साधारण अशुद्धियोंको छोड़कर जिन्हें पाठक सहजमें अवगत कर सकते हैं। दूसरी कुछ अशुद्धिय.का संशोधन नीचे दिया जाता है। पाठकजन अपनी-अपनी अनेकान्त' प्रतियोंमें उन्हें ठीक कर लेनेकी कृपा करें। साथ ही, पृष्ठ १८४के अन्तमें 'शेष पृष्ठ २०१ पर' और पृष्ठ २०१के प्रारम्भमें 'पृष्ठ १८४ से आगे' ऐसा ब्रकिटके भीतर बना लेवें :—

पृष्ठ,	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७८,	३३	क्रमंग	क्रमभंग
१७९	३५	क्रमसे	क्रमसे कम
१८०	२५	असत्य	असद्य
१८१	३३	कल्पना भी	कल्पना थी)
१८३	२८	१०१	१४१
१८३	३६	१७०	१९१
१८३	३७	जिणवरेहिं	जिणवरेहिं १९८
,, का. २,१		जीविद	जीवदि
,, ,,	२३	जिसके	जिनके
,, ,,	२४,२५	सम्वन्ध	सम्बद्ध
१८४	४	भवओ	भगवओ
,,	६	है	रहा है
,,	१३	साथ रहा	साथ
,,	१९	समयका	संयमका
,,	२८	परिशिष्टमें	परिशिष्टों
,,	३३	अन्तः	अन्त
,, का.२,२		न्यायके	न्यायको
,, ,,	१८	जकि	जबकि
,, ,,	१९	निश्चय	निश्चयनय
२०१	१	अनुवयण	अनुप्पयण
,,	४	पडिक्क	पाडिक्क
,,	९	विशेष	(विशेष)
,,	१४	ध्रौव्यमें	ध्रौव्य ये
,,	१६	रहते हैं	रहते हैं, अलग अलग रूपमें ये द्रव्य (सत्—) के कोई लक्षण नहीं होते और इसलिये दोनों मूलनय
,, का० २, ७		बोधको	विरोधको
,, ,,	२५	अद्वितीय है	अद्वितीय है—
,, ,,	३६,३७	अकल्पित एवं प्रतिष्ठित	(अकल्पित एवं प्रतिष्ठित)
,,	३८	मोक्ष	(मोक्ष—
२१०	१	वाली	वाला
,,	२	शासन रूढ	शासनारूढ
,,	२४	अवस्थामें	अवस्था
२१०.का०२,१८		पांच	जो पांच

इसी तरह श्रीकानजी स्वामीके 'जिनशासन नामक' प्रवचन लेखके छपनेमें भी कुछ अशुद्धियाँ हो गई हैं जिनमें से बिन्दु विसर्गादिकी ऐसी साधारण अशुद्धियोंको भी छोड़ कर शेष अशुद्धियोंका संशोधन नीचे दिया जाता है। उन अशुद्धियोंको भी पाठक अपनी अपनी प्रतियोंमें ठीक कर लेनेकी कृपा करें :—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२११	३१,३३	जिनशासन	जैनशासन
" का० २,	१४	जिनशासन हो	जैनशासन हो
" "	१८	जैनधर्म !	जैनधर्म है
" "	२०	विज्ञानघनमें	विज्ञानघन
" "	३०	विकारको	विकारकी
" "	"	प्रधानतामें	प्रधानतामें वीतरागता
२१२ का०२,	३	करता	कराता
" "	७	निमित्त	निमित्तसे
" "	११	उसीने	उसीने जैन शासनको देखा है और वही

—प्रकाशक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतिशय क्षेत्र हलेविड के

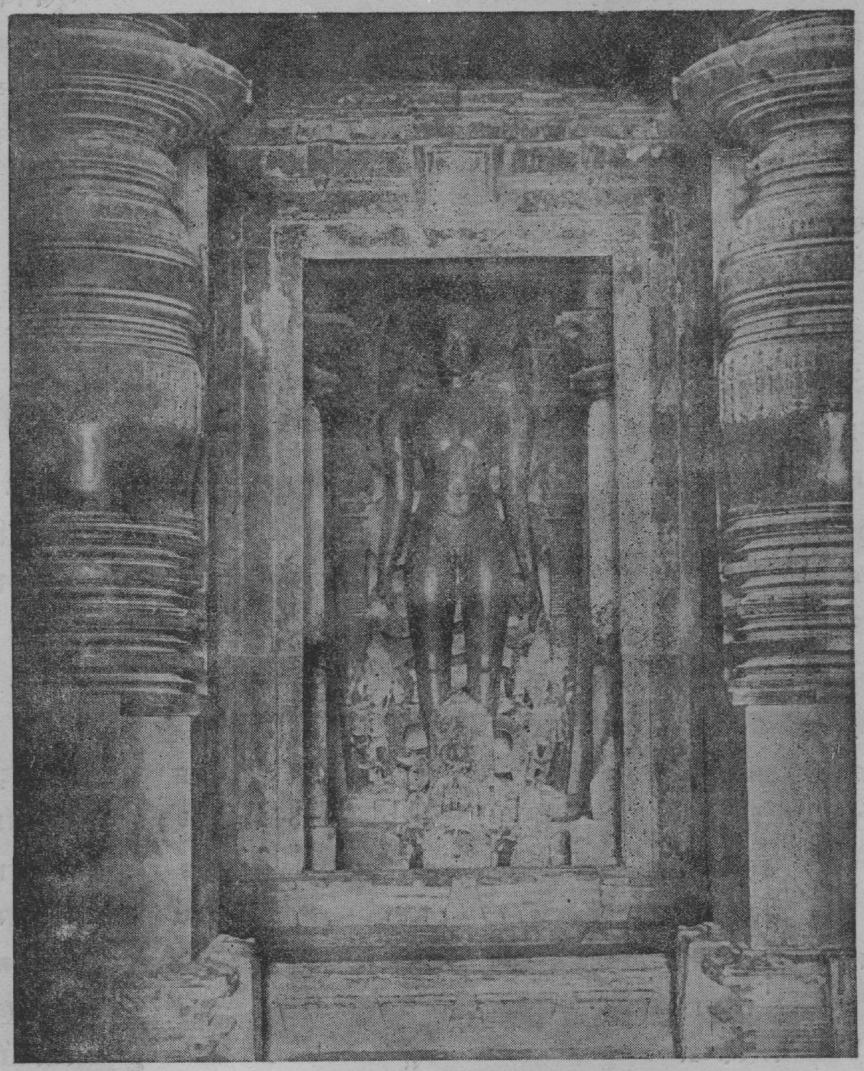

श्रीपार्श्वनाथजिन

इस मन्दिरमें कसौटीके बहुमूल्य खम्भे लगे हुए हैं। यह मन्दिर बड़ा ही सुन्दर बना हुआ है। इसका विशेष परिचय हमारी तीर्थ यात्राके संस्मरण नामक लेखमें दिया जावेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दी जैन-साहित्यमें तत्वज्ञान

(लेखिका—कुमारी किरणबाला जैन)

प्रत्येक प्राणीके शरीरके साथ आत्मा नामकी नित्य वस्तुका सम्बन्ध है। परन्तु फिर भी आत्मा और शरीर दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। आत्मा अनन्त गुणोंका पुँज है, प्रकाशमान है, तथा चैतन्य ज्योतिर्मय है, अविनाशी है और अजर, अमर है। शरीर अचेतन एवं जड़ पदार्थ है। नाशवान है और वह पौद्गलिक कर्म-परमाणुओंसे निर्मित हुआ है। गलना और पूर्ण होजाना इसका स्वभाव है।

विश्वमें जो सुख-दुख, सम्पत्ति-विपत्ति आदि अवस्थायें आती हैं उनका कारण कर्म है। शुभकर्मोंका फल शुभ और अशुभकर्मोंका परिणाम अशुभ होता है। जीवात्मा जैसे-जैसे कर्म करता है उसका वैसा-वैसा ही फल भुगतना पड़ता है। जीवात्माके साथ कर्म-पुद्गलोंका सम्बन्ध अनादिकालसे है। जीव-प्रदेशोंके साथ कर्म-प्रदेशोंका एक क्षेत्रावगाह रूप सम्बन्ध होना बन्ध कहलाता है। यह कर्मबन्ध ही सुख-दुख रूप परम्पराका जनक है। बन्धन ही परतन्त्रता है। और परतन्त्र या पराधीन होना ही दुःख है। आज विश्वमें हम जो कुछ भी परिवर्तन या सुख दुखादि रूप अवस्थाओंको देखते हैं, या उन विविध अवस्थाओंमें समुत्पन्न जीवोंको उन दुःखपूर्ण अवस्थाओंका अवलोकन करते हैं। तब हमें यह स्पष्ट अनुभवमें आता है कि यह संसारके सभी प्राणी स्वकीयोपार्जित कर्मबन्धनसे ही परतन्त्र होकर दुखके पात्र बने हैं।

विश्वमें अनन्त कर्म-परमाणु भरे हुए हैं। जब आत्माकी सकषाय मय मन-वचन-काय रूप योग प्रवृत्तियोंसे आत्मप्रदेश सकम्प एवं चंचल होते हैं तब आत्मा अपनी सराग परिणतिसे कर्मबन्ध करता है यह कर्मबन्ध नवीन नहीं हुआ किन्तु अनादिकालसे है। जिस तरह खानसे निकले हुए सुवर्ण पाषाणमें सोना किसीने आजतक नहीं रक्खा, किन्तु जबसे खानमें पाषाण है तभीसे उसमें सोना भी विद्यमान है। इसमें सुवर्ण पाषाणकी अनादिता स्वयं सिद्ध है। इसी तरह आत्मा और कर्म जुदे-जुदे थे, बादमें किसीने प्रयत्न करके इन्हें मिलाया नहीं, किन्तु अनादिसे जीवात्माके साथ कर्मका सम्बन्ध बन रहा है। बन्धन युक्त कर्म-परमाणुओंमेंसे प्रति समय कर्मवर्गणाओंकी निर्जरा होती रहती है अर्थात् पुराने कर्म अपना फल देकर झड़ जाते हैं और नवीन कर्म रागादि भावोंके कारण बन्धनरूप होते हैं।

जैन दर्शनमें जो कर्म सूक्ष्म शरीरमें बँधते हैं उनके मूल आठ भेद बताये गये हैं—१. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र और ८. अन्तराय।

ज्ञानावरणीय कर्म—ज्ञान आत्माका निजगुण है। आत्मा और ज्ञानका अभेद सम्बन्ध है। ज्ञानावरणीयकर्म आत्माके ज्ञानगुणको मन्द करता है उसे आच्छादित या विकृत बनाता है। इस कर्मके क्षयोपशमसे मानवमें ज्ञानका क्रमिक विकास हीनाधिक रूपमें होता रहता है। जीवात्मामें ज्ञानशक्तिका जो तरतम रूप देखनेमें आता है वह सब उसके क्षयोपशमका ही फल है। इस कर्मके क्षयोपशममें ज्यों-ज्यों निर्मलता बढ़ती जाती है त्यों-त्यों ज्ञानका विकास भी निर्मल रूपमें होता रहता है और जब उस आवरण कर्मका सर्वथा अभाव या क्षय हो जाता है तब आत्मा पूर्ण ज्ञानी बन जाता है। और उस ज्ञानको अनन्तज्ञान या केवलज्ञान कहा जाता है। इस कर्मसे मुक्त होने पर आत्मा अनन्त ज्ञानसे युक्त होता है।

दर्शनावरणीयकर्म—दर्शन भी आत्माका गुण है। दर्शनगुणका आच्छादन करनेवाला कर्म दर्शनावरणीय कहलाता है। इस कर्मका उदय आत्मदर्शनमें रुकावट डालता है, अथवा दर्शन नहीं होने देता, जैसे ड्यौढ़ी पर बैठा हुआ दरवान राजाके दर्शन नहीं करने देता। इसी कर्मके सर्वथा अभावसे आत्मा अनन्त दर्शनका पात्र बनता है।

वेदनीयकर्म—जो सुख-दुखकी सामग्री मिलाकर सुख-दुख रूप फलके भोगनेमें अथवा वेदन (अनुभव) में निमित्त होता है। अनुकूल सामग्रीकी प्राप्तिसे सुख और प्रतिकूल सामग्रीकी प्राप्तिसे दुख होता है।

मोहनीयकर्म—यह कर्म श्रद्धा और चारित्र गुणका घातक है। यह जीवको मदिराके समान उन्मत्त करता अथवा भ्रममें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

डालता है। राग, द्वेष क्रोध और मानादि विभाव उत्पन्न करता है। शान्त भाव व सच्चे विश्वाससे भ्रष्ट करता है। मोह आत्माका प्रबल शत्रु है। परपदार्थोंमें ममताका होना मोह है। इसका जीतना सहज नहीं है। जो इसे जीत लेता है वही संसारमें महान एवं पूज्य बनता है।

आयुकर्म—य कर्म जीवोंको शरीरके अन्दर रोक कर रखता है। जैसे अवधि समाप्त होने तक बन्दीको कारागृहमें रक्खा जाता है और अवधि समाप्त होनेके पश्चात् उसे मुक्त कर दिया जाता है।

नामकर्म—यह कर्म जीवोंके शरीरकी चित्रकारकी तरह अनेक तरहकी अच्छी बुरी रचना करता है। और आत्माके अमूर्तत्व गुणका घात करता है।

गोत्रकर्म—यह कर्म आत्माका माननीय व निन्दनीय कुलमें जन्म कराता है, तथा उसके प्रभावसे हम जगतमें ऊँच व नीच कहे जाते हैं। वास्तवमें हमारा अच्छा बुरा आचारण ही ऊँचता नीचताका कारण है। हम अपने भावोंसे जैसा आचरण करेंगे, उसीके परिपाक स्वरूप ऊँचा नीचा कुल प्राप्त करते हैं।

अन्तरायकर्म—चाहे हुए किसी भी कार्यमें विघ्न उपस्थित हो जाता है, इस कर्मके उदयसे हमारे कामोंमें—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य आदि कार्योंमें—बाधा पहुँचाता है। इसके उदयसे जीवात्मा अपने अभितषित कार्योंको समय पर करनेमें समर्थ नहीं होता है। इन कर्मोंके द्वारा आत्मा सदा परतन्त्र और बंधनसे युक्त रहता है। और इन कर्मोंके सर्वथा क्षय हो जाने पर आत्मा भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है-परब्रह्म परमात्मा हो जाता है। और अनन्तकाल तक वह अपने आत्मीक सुखमें मग्न रहता है और वहांसे कभी भी फिर वापिस नहीं आता। कविवर द्यानतरायजीने अष्ट कर्मोंके स्वरूपका कथन करते हुए उनके रहस्यको आठ दृष्टान्तों द्वारा व्यक्त किया है—

देवपै परयो है पट रूपको न ज्ञान होय
जैसैं दरवान भूप देखनो निवारै है।
शहद लपेटी असि धारा सुख दुखकार,
मदिरा ज्यों जीवनको मोहनी विथारै है॥
काठमें दियो है पांव करे थिति को सुभाव;
चित्रकार नाना भांति चीतके सम्हारै है॥
चक्री ऊँच नीच धरै, भूप दियो मने करै,
एई आठ कर्म हरै सोई हमें तारे है॥

यह कर्मबन्ध चार भेदोंमें विभक्त है प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, प्रदेशबन्ध और अनुभागबन्ध। क्योंकि इन चारों भेदोंका मूल कारण कषाय और योग है। प्रकृति और प्रदेश रूप भागोंका निर्माण योग प्रवृत्तिसे होता है और स्थिति तथा अनुभाग रूप अंशोंका निर्माण कषायसे होता है। प्रकृतिबन्ध—कर्म पुद्गलोंमें ज्ञानको आवृत करने अथवा ढकने, दर्शनको रोकने, सुख दुखका वेदन कराने, आत्मस्वभावको विपरीत एवं अज्ञानी बनाने आदिका जो स्वभाव बनता है वह सब प्रकृतिसे निष्पन्न होनेके कारण प्रकृतिबन्ध कहलाता है। स्थितिबन्ध—बनने वाले उस स्वाभावमें अमुक समय तक विनष्ट न होनेकी जो मर्यादा पुद्गल परमाणुओंमें उत्पन्न होती है उसे कालकी मर्यादा अथवा स्थितिबन्ध कहा जाता है। अनुभावबन्ध—जिस समय उन पुद्गल परमाणुओंमें उक्त स्वभाव निर्माण होता है उसके साथ ही उनमें हीनाधिक रूपमें फल दान देनेकी विशेषताओंका भी बन्ध होता है उनका होना ही अनुभागबन्ध कहलाता है। प्रदेशबंध—कर्मरूप ग्रहण किये गये पुद्गल परमाणुओंमें भिन्न भिन्न नाना स्वभाव रूप परिणत होने वाली उस कर्मराशिका अपने अपने स्वभावानुसार अमुक अमुक परिमाणमें अथवा प्रदेश रूपमें बँट जाना प्रदेशबन्ध कहलाता है।

कर्मोंकी इन आठमूल प्रकृतियोंको दो भागों अथवा भेदोंमें बांटा जाता है-१. घातिया, २. अघातिया। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय, और अन्तराय कर्मोंको घातियाकर्म कहते हैं, क्योंकि ये चारों ही कर्म आत्माके निज स्वभावको विगाड़ते हैं—उसे प्रगट नहीं होने देते। वेदनीय, नाम, गोत्र, और आयु इन चार कर्मोंको अघातिया कर्म कहते हैं, क्योंकि ये जीवके निज स्वभावको घातियाकी तरह बिगाड़ते तो नहीं हैं किन्तु उनमें विकृति होनेके बाह्य साधनोंको मिलानेमें निमित्त होते हैं। इन अष्टकर्मोंमें मोहनीय कर्म अत्यन्त प्रबल है और आत्माका शत्रु है। इसके द्वारा अन्य घातिया कर्मोंमें शक्तिका संचार होता है। इन्द्रियाँ विषयोंकी ओर विशेष रूपसे प्रवृत्त होती हैं। यह जीव इन विषयोंसे निरत रह कर भ्रमवश दुखको भी सुख मानता है। कविवर बनारसी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दासजीने अपने नाटक समयसारमें ऐसे व्यक्तिकी अवस्थाका वर्णन करते हुए कहा है—

'जैसैं कोउ कूकर छुधित सूके हाड़ चावै,
हाड़निकी कोर चहुँ ओर चुभै मुखमें।
गाल तालु रसना मसूढ़निको मांस फाटै,
चाटै निज रूधिर मगन स्वाद-सुखमें।
तैसैं मूढ़ विषयी पुरुष रति रीति ठानै,
तामैं चित्त सानै हित मानै खेद दुःखमें।
देखे परतच्छ बल-हानि मल-मूत खानि,
गहे न गिलानि रहे राग रंग रुखमें ॥३०॥

पंडित दीपचन्दजी शाहने भी अपने 'अनुभवप्रकाश' में ऐसे व्यक्तिके लिये इसीसे समता रखते हुए भाव प्रकट किये हैं:—

"जैसे स्वान हाड़को चावै, अपने गाल, तालु मसूढ़ेका रक्त उतरै, ताकौं जानै भला स्वाद है। ऐसैं मूढ़ आप दुःखमें सुख कल्पै है। परफंदमें सुखकन्द सुखमानै। अग्निकी झाल शरीरमें लागै, तब कहै हमारी ज्योतिका प्रवेश होय है। जो कोई अग्नि झालकूं बुझावे तासों लरै। ऐसैं परमैं दुःख संयोग, परका बुझावै, तासौं शत्रुकी सी दृष्टि देखै। कोप करै। इस पर-जोगमें भोगु मानि भूल्या, भावना स्वरसकी याद न करै। चौरासीमें परवस्तुकौं आपा मानै, तातैं चोर चिरकालका भया। जन्मादि दुख-दण्ड पाये तोहू, चोरी परवस्तुकी न छूटै है। देखो! देखा भूलि तिहुँ लोकका नाथ नीच परकै आधीन भया। अपनी भूलितैं अपनी निधि न पिछानैं। भिखारी भया डोलै है निधि चेतना है सो आप है। दूरि नाहीं, देखना दुर्लभ है। देखैं सुलभ है* ॥४०, ४१॥

'मोक्षमार्गप्रकाशमें' पण्डित टोडरमल्लजीने मोहसे उत्पन्न दुःखका निम्नलिखित रूपसे वर्णन किया है—

'बहुरि मोहका उदय है सो दुःख रूप ही है। कैसैं सो कहिये है:—

'प्रथम तो दर्शनमोहके उदयतैं मिथ्यादर्शन हो है ताकरि जैसैं याके श्रद्धान है तैसैं तो पदार्थ है नाहीं जैसैं पदार्थ है तैसैं यह मानै नाहीं, तातैं याके आकुलता ही रहे। जैसैं बाउलाको काहूने वस्त्र पहिराया, वह बाउला तिस वस्त्रको अपना अंग जानि आपकूं अर शरीरकों एक मानै। वह वस्त्र पहिरावने वालेके आधीन है, सो वह कबहूँ फारै, कबहूँ जोड़े, कबहूँ खोसे. कबहूँ नया पहिरावे इत्यादि चरित्र करे। यह बाउला तिसकों अपने आधीन मानै वाकी पराधीन क्रिया होइ तातैं महा खेद खिन्न होय तैसैं इस जीवकों कर्मोदयतैं शरीर सम्बन्ध कराया। यह जीव तिस शरीरकों एक मानै, सो शरीर कर्मके आधीन, कबहूँ कृश होय कबहूँ स्थूल होय, कबहूँ नष्ट होय, कबहूँ नवीन निपजै इत्यादि चरित्र होय। यह जीव तिसकों अपने आधीन जानै वाकी पराधीन क्रिया होय तातैं महा खेद खिन्न होय है ×।'

इस मोहके फन्देमें फँसा हुआ अभागा जीव अपने भविष्यका कुछ भी ध्यान न रख इन्द्रियोंके आदेशानुसार प्रवर्तन करता है:—

'कायासे विचारि-प्रीति मायाहीमें हार जीत
लियें हठ, रीति जैसैं हारिलकी लकरी।
चंगुलके जोरि जैसैं गोह गहि रहे भूमि,
त्यों ही पाँय गाड़े पै न छांड़े टेक पकरी॥
मोहकी मरोरसों भरमको न ठौर पावै,
धावै चहुँ ओर ज्यों बढ़ावै जाल मकरी।
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूंठके झरोखे झूलि,
फूली फिरै ममता जंजीरनसों जकरी ॥३७॥ १

विशेषतः बंधके पांच कारण हैं—१. मिथ्यात्व, २. अविरति, ३. प्रमाद, ४. कषाय, तथा ५. योग।

मिथ्यात्व—अपनी आत्माका और उससे सम्बन्धित अन्य पदार्थोंका भी यथार्थ रूपसे श्रद्धान न करने, या विपरीत श्रद्धान करनेको मिथ्यात्व कहते हैं। उसमें फंसे हुये प्राणीको वस्तुके यथार्थ स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती।

अविरति—दोष रूप प्रवृत्तिको अविरति कहते हैं। अथवा षट् कायके जीवोंकी रक्षा न करनेका नाम अविरति है। अविरतिके १२ भेद हैं।

प्रमाद अपनी अनवधानता या असावधानीको कहते हैं। उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, और ब्रह्मचर्यके पालनमें चारित्र, गुप्तियां, समितियां इत्यादि आध्यात्मिक प्रवृत्तियोंके समाचरण करनेमें जो वस्तुयें बाधायें उपस्थित करती हैं वे प्रमाद कहलाती हैं। प्रमादके साढ़े सैंतीस हजार भेद हैं, पर मूल १५ भेद हैं, और चार कषाय, चार विकथा, पांच इंद्रियां, निद्रा और स्नेह—

कषाय—जो आत्मा को कषे अथवा दुख दे उसे

* अनुभव प्रकाश पृ० ४०-४१

१ ना० समयसार पृ० ८३। × मोक्ष० प्रकाशक पृ० ६६-७०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषाय कहते हैं यह कषाय ही बन्ध परिणतिका मूल कारण है।

योग—योगके अनेक दार्शनिकोंने भिन्न-भिन्न अर्थ स्वीकार किये हैं। जैन-दर्शन उनमेंसे एकसे भी सहमत नहीं है। वह मानता है कि मन, वचन, कायके, निमित्तसे होने वाली आत्म-प्रदेशोंकी चंचलताको योग कहते हैं। इस दृष्टिसे जैन दर्शनमें योग शब्द अपनी एक पृथक परिभाषा रखता है, योगके १५ भेद हैं—चार मनोयोग, चार वचनयोग और सात काययोग।

इन कर्मोंके बन्धनसे सर्वथा मुक्त होना ही मोक्ष है। इन कर्मोंसे मुक्त होनेके तीन अमोघ उपाय हैं—१. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र। अचार्य श्री उमा स्वामीने इन कर्मोंकी परतन्त्रतासे छूटनेका सरल उपाय बतलाते हुए लिखा है कि—'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' अर्थात् सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकताही मोक्षका मार्ग है। अथवा इन तीनोंकी एकताही मोक्षमार्गकी नियामक है। इन तीनोंमेंसे एकका अभाव हो जाने पर मोक्षके मार्गमें बाधा पड़ती है। श्रीयोगीचन्द्रदेव लिखते हैं—

'दंसण भूमिं वाहिरा जिय वयरुक्ख ण होंति' अर्थात् सम्यग्दर्शन रूपी भूमिके बिना हे जीव! व्रत रूपी वृक्ष नहीं होता।

सम्यग्दर्शन—तत्वोंके श्रद्धानको अथवा जीवादि पदार्थोंके विश्वासको कहते हैं। अज्ञान अँधकारमें लीन रहनेके कारण वह आत्मा पर पदार्थोंको उपादेय समझता है—उन्हें अपने मानता है। और उनसे अपना सम्बन्ध जोड़ता है परन्तु विवेक उत्पन्न होने पर वह उनको हेय अर्थात् अपनेसे पृथक् समझने लगता है। इसी भेद-विज्ञान रूप प्रवृत्तिको सम्यग्दर्शन कहते हैं। समीचीनदृष्टि या सम्यग्दर्शन हो जानेके बाद जीवकी विचारधारामें खासा परिवर्तन हो जाता है। उसकी संकुचित एकान्तिक दृष्टिका अभाव हो जाता है विचारोंमें सरलता समुदारताका दर्शन होने लगता है विपरीत अभिनिवेश अथवा झूठे अभिप्रायके न होनेसे उसकी दृष्टि सम्यक् हो जाती है, वह सहिष्णु और दयालु होता है। उसकी प्रवृत्तिमें प्रशम, संवेग, आस्तिक्य और अनुकम्पा रूप चार भावनाओंका समावेश रहता है। पंडित टोडरमलजी अपने 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' नामक ग्रन्थमें सम्यग्दर्शनका लक्षण तथा उसके भेद बताते हुये लिखते हैं-—

अब सम्यग्दर्शनका सांचा लक्षण कहिये है—विपरीताभिनवेश रहित जीवादि तत्वार्थका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शनका लक्षण है। जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष यह सात तत्वार्थ हैं इनका जो श्रद्धान 'ऐसे ही हैं अन्यथा नाहीं' ऐसा प्रतीत भाव सो तत्वार्थश्रद्धान है बहुरि विपरीताभिनवेशका निराकरणके अर्थि 'सम्यक्' पद कह्या है। जातैं सम्यक्' ऐसा शब्द प्रशंसा वाचक है। सो श्रद्धान विषय विपरीताभिनवेशका अभाव भये ही प्रशंसा संभवै है। ऐसा जानना"[१]

सम्यग्ज्ञान—पदार्थके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान सम्यग्ज्ञान है अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यग्दर्शनके पश्चात् जीवको सम्यग्ज्ञान- की उत्पत्ति होती है। अर्थात् जीवात्मा उपादेय है और और उससे भिन्न समस्त पदार्थ हेय हैं। इस भेद-विज्ञानकी भावना उत्पन्न हो जाने पर ही आत्माको जो सामान्य या विशेष ज्ञान होता है वह यथार्थ होता है उसीको सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

सम्यग्चारित्र पापकी कारणभूत क्रियाओंसे विरक्त होना सम्यग्चारित्र है। सम्यग्ज्ञानके साथ विवेक पूर्वक विभाव परिणतिसे विरक्त होनेके लिए सम्यग्चारित्रकी आवश्यकता होती है। इस तरह रत्नत्रयकी प्राप्ति ही मोक्षका मार्ग है—मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है उसीकी प्राप्तिका हमें निरन्तर उपाय करना चाहिए। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साथ जीवात्मा बन्धनसे मुक्त होनेके लिये यथार्थप्रवृत्तियाँ करनेमें समर्थ और प्रयत्नशील होता है। उसकी वही प्रवृत्तियाँ सम्यग्चारित्र कहलाती हैं। आत्माकी निर्विकार, निर्लेप, अजर, अमर, चिदानन्दघन, कैवल्यमय, सर्वथानिर्दोष और पवित्र बनानेके लिए उपयुक्त तीन तत्व रत्नके समान हैं। इसलिये जैनशासनमें ये 'रत्नत्रय' के नामसे स्थान-स्थान पर निर्दिष्ट किये गये हैं।

इसीका पल्लवित रूप यह है—तीन गुप्ति, पांच समिति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाइस परीषहोंका जय, पांच चारित्र, छह बाह्य तप और छह आभ्यान्तर तप, धर्मध्यान और शुक्लध्यान, इनसे बंधे हुए कर्म शनैः २ निर्जीर्ण होकर जब आत्मासे सर्वथा सम्बन्ध छोड़ देते हैं उसी अवस्थाको मोक्ष कहते हैं। मुक्त जीव फिर बंधनमें कभी नहीं पड़ता। क्योंकि बन्धनके कारणोंका उसके सर्वथा क्षय हो गया है। अतः उसके कर्म बन्धनका कोई कारणही नहीं रहता।

---

१ मोक्ष० प्रकाशक पृ० ४६५.

समयसारके टीकाकार विद्वद्वर रूपचन्दजी

(ले० श्री अगरचन्द नाहटा)

कविवर बनारसीदासजीके समयसार नाटकके भाषा टीकाकार विद्वद्वर रूपचन्दजीके सम्बन्धमें कई वर्षोंसे नाम साम्यके कारण भ्रम चलता आ रहा है. इसका प्रधान कारण यह है कि इस भाषाटीकाको संवत् १९३३ में भीमसी माणिकने प्रकरण रत्नाकरके द्वितीय भागमें प्रकाशित किया। पर मूल रूपमें नहीं, अतएव टीकाकारने अन्तमें अपनी गुरु परम्परा, टीकाका रचनाकाल व स्थान आदिका उल्लेख किया है, वह अप्रकाशित ही रहा। भीमसी माणिकके सामने तो जनता सुगमतासे समझ सके ऐसे ढंगसे ग्रन्थोंको प्रकाशित किया जाय, यही एकमात्र लक्ष्य था। मूल ग्रन्थकी भाषाकी सुरक्षा एवं ग्रन्थकारके भावोंको उन्हींके शब्दोंमें प्रकट करनेकी ओर उनका ध्यान नहीं था। इसीलिए उन्होंने प्राचीन भाषा ग्रन्थोंमें विशेषतः गत भाषा टीकाओंमें मनमाना परिवर्तन करके विस्तृत टीकाका सार (अपने समयकी प्रचलित सुगम भाषामें) ही प्रकाशित किया। उदाहरणार्थ श्रीमद् आनन्दघनजी-की चौवीसी पर मस्तयोगी ज्ञानसारजीका बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत विवेचन है उसे भी आपने संक्षिप्त एवं अपनी भाषामें परिवर्तन करके प्रकाशित किया है। इससे ग्रन्थकी मौलिक विशेषतायें प्रकाशित न हो सकीं। टीकाकारकी परिचायक प्रशस्तियाँ भी उन्होंने देना आवश्यक नहीं समझा, केवल टीकाकारका नाम अवश्य दे दिया है। यही बात समयसार नाटककी रूपचन्दजी रचित भाषा टीकाके लिये चरितार्थ है।

बनारसीदासजी मूलतः श्वेताम्बर खरतर गच्छीय श्रीमालवंशीय श्रावक थे। आगरेमें आने पर दिगम्बर सम्प्रदायकी ओर उनका झुकाव हो गया। आध्यात्म उनका प्रिय विषय बना। यावत् उसमें सराबोर हो गये। कवित्व प्रतिभा उनमें नैसर्गिक थी। जिसका चमत्कार हम उनके नाटक समयसारमें भली भांति पा जाते हैं। मूलतः यह रचना आचार्य कुन्दकुन्दके प्राकृत ग्रन्थके अमृतचन्द्र कृत कलशोंके हिन्दी पद्यानुवादके रूपमें हैं पर कविकी प्रतिभाने उसे मौलिक कृतिकी तरह प्रसिद्ध कर दी। इस ग्रन्थ पर भाषा टीका करने वाले भी कोई दिगम्बर विद्वान ही होंगे ऐसा अनुमान करना स्वाभाविक ही था। दिगम्बर समाजके रूपचन्द नामके दो कवि एवं विद्वान हो भी गये हैं। अतः नाम साम्यसे उन्हींकी ओर ध्यान जाना सहज था। मान्यवर नाथूरामजी प्रेमीने अर्धकथानकके पृष्ठ ७१ में लिखा था कि समयसारकी यह रूपचन्दकी टीका अभी तक हमने नहीं देखी। परन्तु हमारा अनुमान है कि बनारसीदासके साथी रूपचन्दकी होगी। गुरु रूपचन्दकी नहीं। पता नहीं, यहाँ स्मृतिदोषसे प्रेमीजीने यह लिख दिया है या कामताप्रसादजीका उल्लेख परवर्ती है। क्योंकि कामताप्रसादजीके हिन्दी जैन साहित्यके संक्षिप्त इतिहास-पृष्ठ (१८०) के उल्लेखानुसार प्रेमीजी इससे पूर्व अपने हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास पृष्ठ ६८–७१ में इस ग्रन्थके लिखनेके समय इस टीकाको देखी हुई बताते हैं। कामताप्रसादजीने लिखा है कि रूपचन्द पांडे (प्रस्तुत) रूपचन्दजीसे भिन्न हैं। इनकी रची हुई बनारसीदास कृत समयसार टीका प्रेमीजीने एक सज्जनके पास देखी थी। वह बहुत सुन्दर व विशद टीका संवत् १७१८ में बनी हुई है। कामताप्रसादजीके उल्लेखमें टीकाका रचनाकाल संवत् १७१८ लिखा गया है पर वह सही नहीं है। टीका के अन्तके प्रशस्ति पद्यमें 'सतरह सें बीते परिवाणवां वर्ष में' ऐसा पाठ है। अतः रचनाकाल संवत् १७९२ निश्चित होता है। सम्भव है इस टीकाकी प्रतिलिपी करने वालेने या उस पाठको पढ़ने वालेने भ्रमसे बाणुवांके स्थानमें ठाणवां लिख पढ़ लिया हो। मैंने इस टीकाकी प्रति करीब २३ वर्ष पूर्व बीकानेरके जैन ज्ञानभंडारोंमें देखी थी। पर उस पर विशेष प्रकाश डालनेका संयोग अभी तक नहीं मिला। मुनि कांतिसागरजीने 'विशालभारतके' मार्च १९४७ के अंकमें 'कविवर बनारसीदास व उनके हस्त-लिखित ग्रन्थोंकी प्रतियाँ' शीर्षक लेखमें इस टीकाकी एक प्रति मुनिजीके पास थी उसका परिचय इस लेखमें दिया है। इससे पूर्व मैंने सन् १९४३ में जब प्रेमीजीने मुझे अपने सम्पादित अर्धकथानककी प्रति भेजी, भाषा टीकाकार रूपचन्दजीके खरतर गच्छीय होने आदिकी सूचना दे दी थी ऐसा स्मरण है।

अभी कुछ समय पूर्व प्रेमीजीका पत्र मिला कि अर्ध-कथानकका नया संस्करण निकल रहा है अतः समयसारके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

टीकाकार रूपचन्दजीका विशेष परिचय कराना आवश्यक समझा गया। गत कार्तिकमें राजस्थान विश्व विद्यापीठ उदयपुरके महाकवि सूर्यमल आसनके 'राजस्थानी जैन साहित्य' पर भाषण देनेके लिये उदयपुर जानेका प्रसंग मिला, तब चित्तौड़ भी जाना हुआ। और संयोगवश प्रस्तुत रूपचन्दजीके शिष्य परम्पराके यतिवर श्री बालचंद जीके हस्तलिखित ग्रन्थोंको देखनेका सुअवसर मिला। आपके संग्रहमें रूपचन्दजी व उनके गुरु एवं शिष्यादिके हस्तलिखित व रचित अनेक ग्रन्थोंकी प्रतियाँ अवलोकनमें आईं, इससे आपका विशेष परिचय प्रकाशित करनेमें और भी प्रेरणा मिली। प्रस्तुत लेख उसी प्रेरणाका परिणाम है।

महोपाध्याय रूपचन्दजी अपने समयके एक विशिष्ट विद्वान एवं सुकवि थे। आपकी रचनाओंका परिचय मुझे गत २५ वर्षसे बीकानेरके जैन ज्ञानभंडारोंका अवलोकन करने पर मिल ही चुका था। पर आपके जन्म स्थान, वंश आदि जीवनी सम्बन्धी बातें जाननेके लिये कोई साधन प्राप्त नहीं था। १६ वीं सदीके प्रसिद्ध विद्वान, उपाध्याय क्षमाकल्याणजीने महोपाध्याय रूपचन्दजीका गुण वर्णनात्मक-अष्टक बनाया। वह अवलोकनमें आया पर उसका कुछ इतिवृत्त नहीं मिला। गत वर्ष मेरे पुत्र धर्मचंदके विवाहके उपलक्ष्यमें लश्कर जाना हुआ, तो वैवाहिक कार्योंमें जितना समय निकल सका, वहांके श्वेताम्बर मन्दिरके प्रतिमा लेखोंकी नकल करने एवं हस्तलिखित भंडारके अवलोकनमें लगाया। क्योंकि हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज मेरा प्रिय विषय बन गया है। जहाँ कहीं भी उनके होनेकी सूचना मिलती है उन्हें देख कर अज्ञात सामग्रीको प्रकाशमें लानेकी प्रबल उत्कंठा हो उठती है इसीके फलस्वरूप अब भी मेरा कहीं जाना होता है सर्व प्रथम जैन मन्दिरोंके दर्शनके साथ वहांकी मूर्तियोंके लेख लेने एवं हस्तलिखित ज्ञानभंडारोंके अवलोकन इन दो कार्योंके लिये अपना समय निकाल ही लेता हूँ। अपने पुत्रके विवाहके उपलक्षमें जाने पर भी इन दोनों कामोंके लिए लश्करमें कुछ समय निकाला गया। वहांके श्वेताम्बर जैन मन्दिरकी धातु मूर्तियोंके लेख लिये गये और उस मन्दिरमें ही हस्तलिखित ग्रन्थोंका खरतर गच्छीय यतिजीका संग्रह था, उसे भी देख लिया गया!

रूपचंदका जन्म समय वंश व स्थान—

लश्कर मंदिरके इस संग्रहमें महोपाध्याय रूपचन्दजीके अष्टककी एक पत्रकी प्रतियें प्राप्त हुईं। इस अष्टकसे रूपचन्दजी सम्बन्धित कुछ ज्ञातव्य ऐतिहासिक बातें विदित हो सकीं। तथा इसके पांचवें पद्यमें रूपचन्दजीके वंशका परिचय इस प्रकार दिया है—

'वाग्देवता मनुजरूप धरामरौ च,
श्रीओसवंशवर अंचलगोत्र शुद्धाः।
श्री पाठकोत्तमगुणैर्जयति प्रसिद्धाः
सत्पल्लिकापुष्करे भरुमण्डले च ॥

अष्टादशेव शतके 'चतुरुत्तरे च,
त्रिंशतमेव समये गुरुरूपचन्द्राः।
आराधनां धवलभावयुतां विधाय,
आयु सुखं नवति वर्षमितं च भुक्त्वा ॥

अर्थात् आपका वंश ओसवाल व गोत्र आंचलिया था। संवत् १८३४ में आराधना सहित आपका स्वर्गवास ९० वर्षकी उम्रमें पालीमें हुआ।

चित्तौड़के यति बालचन्दजीके संग्रहके एक गुटकेमें इनका जन्म सं० १७३४ लिखा है और स्वर्गवास सं० १८३५। यद्यपि ये दोनों उल्लेख रूपचन्दजीके शिष्य परंपराके ही है। पर हमें अष्टक वाला उल्लेख अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है। अष्टककी रचना शिवचन्दके शिष्य रामचन्द्रने की थी। सम्वत् १९१० के मार्गशिर सुदी पूनमको यह अष्टक बनाया गया है। इसमें रूपचन्दजीके स्वर्गवास पर झालरके पासमें जिनकुशलसूरिजीके रूपके दक्षिण दिशामें रूपचन्दजीकी पादुकायें संवत् १८५७ में स्थापित करनेका उल्लेख है। चित्तौड़के गुटकेके अनुसार रूपचन्दजीकी आयु १०१ वर्षकी हो जाती है और अष्टकमें स्पष्टरूपसे ९० वर्षकी आयुमें स्वर्गवास होनेको लिखा है। मेरी रायमें वही उल्लेख ठीक है : इनके अनुसार रूपचन्दजीका जन्म संवत् १७४४ सिद्ध होता है। चित्तौड़ वाले गुटकेमें १७३४ स्मृति कोषसे लिखा गया प्रतीत होता है इनके गोत्रका नाम आंचलिया है। जिसकी बस्ती बीकानेरके देशनोक आदि कई गांवोंमें अब भी पाई जाती है। अतः रूपचन्दजीका जन्म स्थान बीकानेरके ही किसी गाममें होना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संवतानुक्रम इतिवृत्त लेखनकी प्रणाली—

खरतर गच्छमें १३वीं शतीसे ऐतिहासिक वृतांत लिखा जाता रहा है। फलतः जिनदत्तसूरिजीके शिष्य मणिधारी जिनचन्द्रसूरिसे लगाकर जो मूर्ति व मन्दिरोंकी प्रतिष्ठा, दीक्षा आदि महत्वपूर्णकार्य दफ्तर वहीमें लिखे जाने लगे। जिनके आधारसे युगप्रधान गुरु वावनीका प्रथम संकलन जिनपाल उपाध्यायने संवत् १३०५ के आस-पास किया था। जिसके पश्चात् उनकी पूर्ति समय समय पर इस गच्छके अन्य विद्वान यतिगण करते रहे। संवत् १३९३ तककी संवतानुक्रमसे लिखित घटनाओंके संग्रह वाली युगप्रधान गुर्वावलिकी प्रति बीकानेरके क्षमा-कल्याणजीके ज्ञान भंडारमें हैं। हमें वह करीब १५ वर्ष पूर्व प्राप्त हुई थी। यह अपने ढङ्गका एक अद्वितीय ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसके महत्वके सम्बन्धमें भारतीय विद्यामें हमने एक लेख भी प्रकाशित किया था। सिंधी जैन ग्रन्थमालासे करीब १०-वर्ष हुए यह छपी हुई पड़ी है। पर मुनि जिनविजयजीके प्रस्तावना आदिके लियेभी उसका प्रकाशन रुका हुआ है। इसके बादकी गुर्वावली जैसलमेर के बड़े ज्ञान भंडारमें होनेका उल्लेख मिला था। पर अब वह प्रति वहाँ नहीं है। परवर्ती कई दफ्तर-वहियें भी अब प्राप्त नहीं हैं। संवत् १७००से फिर यह सिलसिला मिलता है। जिससे विगत ३०० वष में खरतरगच्छकी भट्टारक शाखामें जितने भी मुनि दीक्षित हुए उनका मूल नाम क्या था दीक्षा नाम क्या रक्खा गया, किसका शिष्य बनाया गया। किस सम्वत् व मितीमें कहाँ पर किस आचार्यके पास दीक्षा ली गई, इसकी सूची मिल जाती है।

रूपचंदजीकी दीक्षा—

मैंने एक ऐसीही दफ्तर वहीसे दीक्षा सूचीकी नकल प्राप्त की है। उसके अनुसार रूपचन्दजी की दीक्षा सम्वत् १७२५ के वैशाख वदी २ को विल्हावास गांवमें आचार्य जिनचन्द्रसूरिजीके हाथसे हुई थी। ये दयासिंहजीके शिष्य थे। और इनकी दीक्षाका नाम रामविजय रखा गया।

गुरु परम्परा—

आपकी रचना एवं अन्य साधनोंके अनुसार इनकी गुरु परम्पराकी नामावली इस प्रकार विदित हुई है।

(१) जिनकुशलसूरि आचार्यपद सम्वत् १३७७ से सम्वत् १३८९ में स्वर्गवास।

(२) महोपाध्याय विनयप्रभ (गौतमरासके रचयिता)

(३) विजय तिलक (सुप्रसिद्ध शत्रुञ्जय स्तवनके रचियता)

(४) क्षमाकीर्ति (५) उपाध्याय तपोरत्न (६) वचक भुवनसोम (७) साधु रङ्ग (८) वा० धर्मसुन्दर (९) वा० दान विनय (१०) वा० गुणवर्द्धन (११) श्रीसोम (१२) शान्ति हर्ष (१३) जिनहर्ष।

इनमें कई तो उच्च विद्वान ग्रंथकार हो गये हैं. कविवर जिन-हर्ष तो बहुत बड़े लोक भाषाके कवि थे। इनकी रचनाएँ लक्षाधिक श्लोक परिमाणकी प्राप्त हैं। मूलतः ये राजस्थानके थे। जसराज इनका मूल नाम था। सम्वत् १७०४ से सम्वत् १७६३ तककी आपकी सैकड़ों रचनायें उपलब्ध हैं आपका प्राथमिक जीवन राजस्थानमें बीता तब तककी इनकी रचनाओंकी भाषा राजस्थानी ही है। पीछेसे ये गुजरात व पाटणमें किसी कारणवश जाके जम गये। अतः उत्तरकालीन रचनाओंकी भाषामें गुजरातीकी प्रधानता है। आपके सम्बन्धमें 'राजस्थान क्षितिज' नामक मासिक पत्रमें सुकवि जसराज और उनकी रचनायें' शीर्षक मेरा लेख प्रकाशित हो चुका है।

महोपाध्याय रूपचन्दजीने अपनी रचनाओंके अन्तमें स्वगुरु परम्पराका परिचय देते हुए अपनेको क्षेमशाखाके शान्तिहर्षके शिष्य वाचक सुखवर्धनके शिष्य वाणारस दयासिंहका शिष्य बतलाया है। आपकी लिखित अनेक प्रतियां यति बालचन्दजीके संग्रहमें देखनेको मिलीं। उनसे आपके भारतव्यापी विहार एवं चतुर्मास करनेका पता चलता है।

ग्रन्थ रचना—

आपकी उपलब्ध रचनाओंमें प्रथम समुद्रबद्ध कवित्त १७-६७ में विल्हावासमें रचित प्राप्त है। और अन्तिम रचना संवत् १८२६ की है। इससे ५६ वर्ष तक आप साहित्य सेवा करते रहे; जिससे आपकी रचनाओंसे आपकी विद्वत्ता-का भलिभांति पता चल जाता है। संस्कृत एवं राजस्थानीमें गद्य एवं पद्य दोनों प्रकारकी रचनायें प्राप्त हैं। आप सुकवि होनेके साथ २ सफल टीकाकार भी थे। संस्कतभाषाके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो आप प्रकांड पण्डित थे। गौतमीयकाव्य एवं कई स्तोत्र आदि आपके काव्य प्रतिभाके परिचायक हैं। सिद्धान्त-चन्द्रिकावृत्ति आपके व्याकरण ज्ञान एवं गुणमाला प्रकरण आदि जैन सिद्धान्तोंके गंभीर ज्ञानकी सूचना देते हैं। हेमी नाममाला, अमरू शतक, भर्तृहरि. शतकत्रय, लघुस्तवन भक्तामर, कल्याणमन्दिर, शतश्लोकी, सन्निपातकलिका आदि संकृत ग्रन्थोंकी भाषा टीका आपने राजस्थानी व हिन्दीभाषामें की। प्रथम वार भाषाटीका हिन्दी गद्यमें लिखी गई है इससे प्राकृत संस्कृत हिन्दी व राजस्थानी इस चारों भाषाओंके आप ज्ञाता व लेखक सिद्ध हैं।

व्याकरण, कोश, काव्य, वैद्यक और जैन सिद्धान्तके विद्वान होनेके साथ साथ आपका ज्योतिष सम्बन्धि ज्ञान भी उल्लेखनीय हैं। मुहूर्त मणिमाला व विवाह पटल आपके ज्योतिषके ग्रन्थ हैं। आपके प्रशिष्य रामचन्द्रके रचयिता आपके स्तुति अष्टकमें आपको षट्शास्त्रवादजयिका, अष्टावधान करनेमें कुशल, इच्छालिपिके आविष्कारक, सकल समस्त वाङ्मय पारंगत, जीवनपर्यन्त, शीलधारक सौम्यमूर्ति आदि विशेषणोंसे युक्त बतलाया है।

उपाध्याय पद—

आपकी विद्वत्ताके कारण ही आचार्य जिनलाभसूरिने संवत् १८१७ से पूर्व आपको उपाध्याय पदसे अलंकृत किया था। खरतरगच्छकी परम्पराके अनुसार जिस समयमें जो उपाध्याय सबसे अधिक दीक्षा पर्यायमें वृद्ध होता है। उसे महोपाध्याय लिखा जाता है। आपने लंबी आयु पाई और छोटी उम्रमें ही दीक्षा लेनेके कारण चारित्र पर्याय भी खूब पाला। अतः आप अपने समयके महोपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित हुये।

विहार —

आपका विहार प्रधानतया बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर राज्यमें हुआ। बीकानेर जोधपुर, पाली, सोजत, विल्हावास, कालाकुन्ता बीदासर आदि स्थानोंमें आपके रचे हुये ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

जिन सुखसूरि मजलस संवत् १७७२ में आपने बनवाई जिसमें उर्दू शब्दोंकी प्रधानता है। 'भक्ति सूरिसिंह चले' छन्द आपकी पंजाबी भाषाकी रचना है। इन दोनों रचनाओंसे आपका बिहार, पंजाब और सिंधमें होना भी सिद्ध होता है। गौतमीय काव्यकी प्रशस्तिमें रूपचन्दजीने अपनेको जोधपुरके महाराजा अभयसिंहसे सन्मान प्राप्त करने वाला लिखा है। इन महाराजाका समय १७८१ से १८०६ तक का है। प्रशस्तिका वह श्लोक इस प्रकार है।

तच्छिष्योऽभयसिंह नाम नृपते, लब्धप्रतिष्ठा महा।
गाम्भीरार्थ, अर्हत्शास्त्रतत्वरसिकोऽहम् रूपचन्द्रा हृदयान्
प्रख्यातापर नाम रामविजयो, गच्छेशदत्ताज्ञयाः।
काव्ये कार्यमिमं कवित्व कलया श्रीगौतमीये शुभम्।

काव्य प्रतिभा—प्रस्तुत काव्य ११ सर्गोंका है इसकी टीका आपकी विद्यमानतामें ही क्षमाकल्याणने बनानी प्रारम्भ की थी और उसकी पूर्णाहुति आपके स्वर्गवास होनेके बाद हुई। यह ग्रन्थ टीका सहित छप चुका है। इस ग्रन्थकी प्रस्तावनामें पण्डित नारायणराम आचार्य काव्यतीर्थने इस काव्यकी प्रशंसा करते हुए लिखा है।

प्रकृतमिदं काव्यमनेनैवोद्देश्येन जैनसारस्वतभांडागारे रत्नमिव चमत्कुरुते। जैन संप्रदायं प्रतिप्रमेयानुन्मखी कर्तुम् अहिंसादयाव्रतानुगामिनं श्रद्धानं दृढीकर्तुमेव च कविं गगनचन्द्रेण श्रीमतापाठकेन रूपचंद्रेण तदिदं काव्यमुपानिबद्धम्। नामतस्तदिदं काव्यम्, किन्तु जैनसंप्रदाय रहस्यबोधने प्रमाण ग्रंथा, वादग्रंथ महाकाव्यम् सिद्धान्तबोधने सम्यक् प्रभवति।

'काव्य गगन रवैः श्री रूपचन्द्र कवै कवितानि गुम्फन पाटवं तथा विद्यते येन हि क्लिष्टोऽपि विषयो नीरसोपि च वर्ण्यो लोकानां हृदयावर्जनक्षमो भवति। ऋतु उपवनादि वर्णने तु कवेर्मश्रुरा रचनास्त्येव, परं सिद्धान्त तत्त्वबोधनेऽपि सैव कवे शैली एकान्तभावेन प्रचंडनीतिमहदेव गोरवं कथयितुः। ❀

राजस्थानी भाषाके काव्योंमें आपकी चित्रसेन यशावति रास (रचना सम्वत् १८१४ बीकानेर) नेमिनाथरासो, गौडीछन्द, ओशवालरास, फलोदी स्तवन, आबूस्तवन, समुद्रबंध कवित्त आदि उल्लेखनीय हैं। जिन सुख सूरि मजलश हिन्दीभाषामें तुकान्त गद्यकी विशिष्ट रचना है। आपकी ज्ञात समस्त रचनाओंकी नामावली आगे दी जायेगी।

❀ लेखमें संस्कृत पद्य और गद्य बहुत अशुद्ध रूपमें है इसे यहां उसी रूपमें दिया जा रहा है। —प्रकाशक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिष्य परम्परा—

महोपाध्याय रूपचन्द्रजीकी शिष्यपरंपरामें शिवचंदजी आदि अच्छे विद्वान हो गये हैं। आज भी खरतरगच्छके भट्टारक बीकानेर गद्दीके श्रीपूज्य विजयेन्द्रसूरिजी इनकी ही विद्वद् शिष्य परंपराके प्रतीक हैं। चित्तौड़के यति बालचंदजी भी बड़े सज्जन व्यक्ति हैं। ग्वालियरमें रामचन्द्रजीकी शिष्य पपंपरा चल रही है। जिनका संग्रह लश्करके श्वेताम्बर जैन मन्दिरमें रक्खा हुआ है। शिष्य परंपराका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—रूपचन्दजीने अपने ग्रंथोंमेंसे कई ग्रन्थ स्वशिष्य पदमा और वस्ताके लिये बनाये ऐसा उल्लेख किया है। उनके दीक्षा नाम पुण्यशील विद्याशील था। इनमेंसे पुण्यशील रचित ज्ञेय चतुर्विंशतिस्तवन मुनि विनयसागरजी ने प्रकाशित किये हैं, जिनकी प्रस्तावना मैंने लिखी है। ज्ञानानंद प्रकाशन नामक आपके ग्रन्थकी अपूर्ण प्रति चित्तौड़के यति बालचंदजीके संग्रहमें अभी अवलोकनमें आई जिसकी पूर्ण प्रति प्राप्त करना आवश्यक है।

पुण्यशीलके शिष्य समयसुन्दर उनके शिष्य उपाध्याय शिवचंद्रभी बड़े अच्छे विद्वान हो गये हैं। जिनके रचित प्रद्युम्नलीलाप्रकाशकी प्रति भी अपूर्ण व त्रुटित अवस्थामें प्राप्त हुई है। इसकी भी पूरी प्रति प्राप्त होनी आवश्यक है। आपके रचित ऋषिमण्डलपूजा आदि प्रकाशित हो चुकी हैं शिवचंद्रजीके शिष्य रूपचंद्रजी अच्छे विद्वान थे, जिनके रचित कई ग्रंथ प्राप्त हैं। रामचंद्रजीके शिष्य उदयराजके शिष्य नेमचंद्रजी थे। जिनके शिष्य यति श्यामलालजीका उपाश्रय जयपुरमें है। इनके ही शिष्य विजयेन्द्र सूरिजी वर्तमान बीकानेर शाखाके श्री पूज्य हैं। शिवचंद्रजीके दूसरे शिष्य ज्ञानविशालजीके शिष्य अमोलकचंद और उनके शिष्य विनयचन्द्र हुए। जो सम्वत् १९४१ तक विद्वान थे चित्तौड़के यति बालचंद्रजी उन्हींके प्रशिष्य होंगे। अब महोपाध्याय रूपचन्द्रजीकी रचनाओंकी सूची सम्वत्क्रमसे नीचे दी जा रहीं हैं—

(१) समुद्रबद्ध कवित्त सम्वत् १७६७ विल्हाबास में रचित (२) जिनसुखसूरि मजलस सम्वत १७७२ (३) शतकत्रय बालावबोध, संवत् १७८८ कार्तिक वदि १३ सोजत (४) अमरुशतक बालावबोध, सम्वत् १७९१ असोजसुदि १२ सोजत (५ समयसार बालावबोध सम्वत् १७९२ व असोजबदि (स्वयं लिखित प्रति यति बालचन्द्रजीके संग्रहमें, समयसार मूलकी भी संवत् १७६३ में रूपचन्द्र जीकी लिखित प्रति उनके संग्रहमें हैं) (६) लघुस्तवटव्वा सम्वत् १७९८ (७) मुहूर्तमणिमाला (पत्र ९६ ग्रन्थ १८९१) सम्वत् १८०१ मिगसरसुदी १ जोशी रामकिशनके पुत्र बच्छराजके लिए रचित।) (८) गौतमीय काव्य, सम्वत् १८०७ जोधपुर रामसिंह राज्ये रचित। (९) भक्तामर टब्बा, सम्वत् १८११ (कालाऊनामें, शिष्य पुण्यशील, विद्याशीलके आग्रहसे रचित (१०) कल्याणमन्दिर टब्बा सम्वत् १८११ कालाऊनामें।

(११) 'दुरियर' वीरस्तोत्र बालावबोध, लेखन संवत् १८१३ बीलाडा 'पत्र' ७ (१२) चित्रसेन पद्मावती—चौपाई सम्वत् १८१४ पौह सुदी १४ बीकानेर (१३ चतुर्विंशति जिन स्तुति पंचाशिका, संवत् १८१४ माघवदी ३ बीकानेर (१४) गुणमाला प्रकरण, संवत् १८१७ जैसलमेर। (१५) साधुसमाचारी सम्वत् १८१९ (यह कल्पसूत्र बालावबोधके अन्तरगत ही संभव है। (१६) आबू तीर्थयात्रा स्तवन संवत् १८२१ आचार्य जिनलाभसूरिके साथ ८५ मुनियोंके साथ यात्रा (१७) हेमीनाममाला भाषाटीका (६ कांड) सम्वत् १८२२ पौह सुदी ३ कालाऊना (मुणोतसूरतरामके लिये) (१८) फलौदी पार्श्वस्तवन, सम्वत् १८२३ मिगसर सुदी ८ (१९) अल्पाबहुत्व स्तवन सम्वत् १८२३ कालाऊनामें लिखित प्रति (२१) शत श्लोकी टब्बा १८३१ मिगसरसुदी १० पाली। (२२) सन्निपात कलिका टब्बा सम्वत् १८३१ माघसुदि १, पाली। (२३) सिद्धान्तचन्द्रिका सुबोधिकावृत्ति (पत्र १२४) सम्वत् १८३४ से पूर्व (सम्वत् है पर स्पष्ट नहीं हो पाया। (२४) कल्पसूत्रबालावबोध (२५) वीर आयु ७२ वर्ष स्पष्टीकरण, सम्वत् १८३४ से पूर्व (२६) नेमि नवरसा (२७) गौड़ी छंद (गाथा १३६) (२८) ओसवालरास गा० १५४ (२९) नयनिक्षेपस्तवन गा० ३२ (३०) सहस्रकूटस्तवन। १७ (३१) विवाहपडल (३२) वीर पंचकल्याणक स्तवन (३३) स्तवनावली (३४) वैराग्य सज्झाय (३५) साधाचार षटत्रिंशिका (३६) पार्श्वस्तवन सटीक (३७ श्रुतदेवी स्तोत्र (श्लोक १६) (३८) विज्ञप्ति द्वात्रिंशिका गा० ३३ (३९) ऋषभदेव स्तोत्र (४०) कुशलसूरि अष्टक आदि—

अभी जयपुरके यति श्यामलालजीका संग्रह देखना और बाकी है। तथा चित्तौड़ वाले यति बालचन्द्रजीके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुरु भाइयोंका भी संग्रह देखनेमें आया तो सम्भव है कि महोपाध्याय रूपचन्दजीके और भी ग्रंथ उपलब्ध हो जांय।

संक्षेपमें जितनी जानकारी प्राप्त हुई है प्रकाशमें लाई जा रही है। विस्तारसे फिर कभी अवकाश मिला तो उपस्थित करूंगा।

(अनुपूर्ति)

दो महीने हुए अभी-अभी नाथूरामजी प्रेमीसे रूपचंद जी रचित समयसार टीकाका नया संस्करण ब्र. नन्दलाल दिगम्बर जैनग्रन्थमाला भिंडसे प्रकाशित होनेकी सूचना मिली। ता० ६ अगस्तको रोडयो प्रोग्रामके प्रसङ्गसे दिल्ली जाना हुआ, तो दिल्ली हिन्दू कॉलेजके प्रो० दशरथ शर्माके संग्रहीत पुस्तकोंमें इसकी प्रति देखनेमें आई इस संस्करण में भी वही भ्रम दुहराया गया है। इसके मुख पृष्ठ पर रूपचन्दजीको 'पांडे' लिखा है। प्रस्तावनामें पं० झम्मनलालजी तर्कतीर्थने इन्हें बनारसीदासजीके गुरु पंचमंगलके रचयिता बतलाया है। पर इस भाषा टीकाके शब्दों एवं अन्तकी प्रशस्ति पद्योंपर जराभी ध्यान देते तो इसके रचयिता पांडे रूपचन्दजीसे भिन्न खरतरगच्छीय रूपचन्दजी हैं, यह स्पष्ट जान लेते। देखिये पृ० २६८, २८० में टीकाकारने श्वेताम्बर होनेके कारण ही ये शब्द लिखे हैं 'साधुके २८ मूल गुण कहे सो दिगम्बर सम्प्रदाय हैं।

२. अप्रमत्त गुणस्थानके कथनको 'ये कथन दिगम्बर सम्प्रदायको है' लिखा है। पृ० ६१०-६११ में जिस पद्यमें बनारसीदासजीने पण्डित रूपचन्दका उल्लेख कियाहै उसकी टीका करते हुए रूपचन्द नामके आगे 'जी' विशेषण दिया है और केवल मूल गत उल्लेख को ही दुहरा दिया है। यदि इसके रचयिता पांडे रूपचन्दजी होते तो टीकामें अपने नामके आगे 'जी' विशेषण कभी नहीं लिखते और टीकाका स्पष्टीकरण भी कुछ भिन्न तरहसे करते।

प्रस्तुत संस्करणमें मूल ग्रन्थके समाप्तिके बाद टीकाके रचना कालका सूचक पद्य भी छपा है उस पद्यके 'सत्रहसौ बीते परि बानुजा' वर्षमें जिस पाठ पर ध्यान न देकर अर्थ करनेमें रचनाकाल सम्वत् १७०० सत्रहसौसे और छंदमय पद्य सुबोध ग्रन्थ लिखकेपूर्ण किया'लिख दिया गया है। जब कि पद्यमें वार्तिक वात रूप शब्द आते हैं जिसका अर्थ 'भाषामें गद्य टीका' होता है। पारिवानुवा पाठका सन्धि विच्छेद परिवानु और 'आ' अलग छपनेसे उनके शब्दोंकी ओर ध्यान नहीं गया प्रतीत होता है। टीकाकारके परिचायक प्रशस्ति पद्य भी लेखन पुस्तिकाके बाद छापने के कारण रचयितासे सम्बन्धित सारी बातें स्पष्ट होने परभी सम्पादकका उस ओर ध्यान नहीं गया उन दो सवैयोंमें टीकाकारने अपनेको खेम शाखाके सुख वर्धनके शिष्य दयासिंहका शिष्य बतलाया है। खरतर गच्छके आचार्य जिन भक्ति सूरिके राज्यमें सोनगिरिपुरमें गंगाधर गोत्रीय नथमलके पुत्र फतेचन्द पृथ्वीराजमेंसे फतेचन्दके पुत्र जसरूप, जगन्नाथमेंसे जगन्नाथके समझानेके लिये यह सुगम विवरण बनाया गया लिखा है।

वास्तवमें पांडे रूपचंदजीका स्वर्गवास तो अर्ध कथानकके पद्यांक ६३५के अनुसार सम्वत् १६६२से ६४के बीच हो गया, सिद्ध होता है। यह टीका उनके सौ वर्षके पश्चात् खरतरगच्छके यति महोपाध्याय रूपचन्दने बनाई है। भविष्यमें इस भ्रमको कोई न दुहराये इसीलिये मैंने यह विशेष शोधपूर्ण लेख प्रकाशित करना आवश्यक समझा।

'समयसारकी १५ वीं गाथा और श्रीकानजी स्वामी नामका सम्पादकीय लेख सम्पादकजीके बाहर रहने आदिके कारण, इस किरणमें नहीं जा रहा है। वह अगली किरणमें दिया जावेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा और जैन संस्कृतिका प्रसार

तथा एक चेतावनी—

भाइयो और बहनो,

युग अब बदल गया है और बड़ी तेजीसे संसारका सब कुछ बदल रहा है। लोगोंकी विचारधारामें बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है और होता जारहा है। समयकी जरूरत और मांगके अनुकूल अपना रवैया और रीति-नीति बनाना और वैसा ही आचरण एवं व्यवहार वर्तना ही बुद्धिमानी कही जा सकती है। देशों, ज़ातियों, समाजों और सम्प्रदायोंके पतन इसी कारण हुए कि वे समयकी समानतामें अपनेको नहीं ला सके। संक्षेपमें जैनियोंकी वर्तमान हालत वैसी ही हो रही है। हमारे पूर्वज समयकी गतिके साथ चलना जानते थे इसीलिए हम आज भी शेष हैं; *परन्तु बौद्धोंका नाम भारतमें न रहा।* अपने पूर्वजोंकी इस दीर्घ दर्शिताको हम भूल रहे हैं। यह एक महा भयंकर बात है जिसका परिणाम हम अभी नहीं सोच, समझ और जान रहे हैं। यदि यही हालत बनी रही; हमारी निष्क्रियता नहीं छूटी एवं हम संसारकी समस्याओं और परिस्थितियोंसे अपनेको अलग, दूर और उदासीन ही रखते रहे तो इससे आगे चल कर बड़ा भारी अनिष्ट होगा। भले ही इस बात और चेतावनी (Warning) की महत्ताको हम समझें या न समझें, जानें या न जानें, अथवा जान बूझ कर भी अनजाने बने रहें यह दूसरी बात है। अनजान बने रहनेसे तो फलमें कमी नहीं आ सकती। हम अपने पैरों अपने आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं। ये लक्षण अच्छे नहीं—हानिकारक हैं व्यक्तिके लिए भी और समाज एवं देश और मानवताके लिए भी।

यह प्रचारका युग है। देश और विश्वके जनमतको अपने पक्षमें लाना और अपना प्रशंसक बनाना अपने अस्तित्वकी सुरक्षा और विरोध या कटुतारहित उन्नतिके लिए आवश्यक है। तथा संसारके धनी और शक्तिशाली देश भी, जिन्हें कोई कमी नहीं और जिन्हें बाहरी सहायताकी अपेक्षा नहीं, संसारकी जनताका सौहार्द, प्रशंसा, सहानुभूति एवं सहयोग पानेके लिए अपनेको एवं अपनी नीतिको सर्व जनप्रिय बनानेके लिए ही प्रचारमें अरबों खरबों रुपए खर्च कर रहे हैं। उन्हें क्या कमी थी? पर नहीं। सद्भावना, सदिच्छा और व्यापक समर्थन ही जीने (Life and living) का तत्व, अमृत और कुंजी है। इसीलिए वे प्रचारमें अपनी सारी शक्ति लगा कर लगे हुए हैं। जैनियोंको भी अपने सिद्धान्तकी वैज्ञानिकता, सत्यता, समीचीनता, व्यावहारिकता इत्यादिका प्रचार व्यापक रूपमें करना होगा। यदि वे निकट भविष्यमें आने वाले समयमें, अपनी संस्कृतिकी, अपनी स्वयंकी और अपनी धार्मिक संस्थाओं, तीर्थों एवं पूज्य प्रतिमाओंकी सुरक्षा सच्चे दिलसे चाहते हैं और यह नहीं पसन्द करते हैं कि आगे चल कर उनकी निष्क्रियता और अन्यमनस्कताके कारण—उन्हींके अपने दोषोंके कारण—उनके अपने नाम और निशान भी लोप हो जांय, बाकी न रह जांय। जैनियोंके सारे सार्वजनिक कालेज, स्कूल, धर्मार्थ-चिकित्सालय, धर्मशालाएँ, मन्दिर इत्यादि और अब तक की अपार दानशीलता एकदम व्यर्थ जायगी यदि अबसे भी समयकी मांगके अनुसार व्यापक प्रचारको हाथमें नहीं लिया गया। चेतना जीवन है और निष्क्रियता विनाश या मृत्यु। जागरण और जागृति तो कुछ हमारेमें है पर हमारी शक्तियाँ उचित दिशामें नहीं लगाई जा रही हैं। यही खराबी है।

विश्वव्यापी प्रचारकी एक ऐसी संस्था बनाई जानी चाहिए जिसमें श्वेताम्बर, दिगम्बरादि सभी बिना किसी मत भेदके सम्मिलित शक्ति लगा कर जोर शोरसे कार्य आरम्भ करदें—तभी कुछ अच्छा फल निकल सकता है। काफी देर हो चुकी है, यदि हम अब भी नहीं चेते तो उद्धार या रक्षाका उपाय बादमें होना सम्भव नहीं रह जायगा।

विश्वकी जनतामें मानव-समानताकी भावना और स्वाधिकार-प्राप्तिकी चेष्टा दिन दिन बढ़ती जाती है। दबा हुआ वर्ग सचेत, सजग, सज्ञान हो गया है और अधिकाधिक होता जा रहा है। सभी मानवोंका सुख दुख और जीवनकी आवश्यकताएँ समान हैं एवं पृथ्वी और प्रकृति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर हर मानवका, मानव रूपमें जन्म लेनेके कारण रहने और उन्नति करनेका समान हक है, ऐसी भावना दिन दिन प्रबल होती जा रही है। जैनदर्शन, धर्म और सिद्धान्त भी यही शिक्षा देते हैं और जैनियोंका सारा धार्मिक एवं सामाजिक निर्माण और व्यवस्थाएँ इसी आदर्शको लेकर संस्थापित हुई हैं। केवल जैनधर्म ही ऐसा धर्म है जो 'मनुष्यकी पूर्णता' को ही सर्वोच्च ध्येय या आदर्श मानता और प्रतिपादित करता है। बाकी दूसरे लोग 'देवत्व' को ही आदर्श मानते हैं—जो संसारकी सबसे बड़ी ग़लती रही है। तीर्थंकरको मानवकी पूर्णताका सर्वोच्च एवं सर्वांगपूर्ण उत्तम आदर्श माना गया है। इसी आदर्शके व्यापक विस्तार, प्रचार और प्रसरणसे ही मानव-मात्रका सच्चा कल्याण हो सकता है। अहिंसा और सत्य तो इसीकी दो शाखाएँ हैं, जिनका भी शुद्ध विकास जैन सिद्धान्तोंमें ही परस्पर अविरोधी रूपसे पूर्णताको प्राप्त होता है। मानव-कल्याणकी कामनासे भी और स्वकल्याण की भ्रमरहित भावनासे भी हमारा यह पहला कर्त्तव्य है कि हम इन सच्चे विश्व-कल्याणकारी सिद्धान्तोंका विश्व-व्यापक प्रचार अपनी पूरी शक्ति लगा कर करें। अन्यथा हम मिट जायेंगे और हमारी सारी दूसरी सुकृतियाँ मिट्टी-में मिल जायेंगी, बेकार हो जायेंगी—किसी काममें नहीं आवेंगी। सावधान! उठो, जागो और काममें लग जाओ। अब अधिक देर करना अथवा अनिश्चितताकी दीर्घसूत्रीदशा विनाशकारक होगी। अब तक जो ग़लती या ढिलाई इस काममें हो गई सो हो गई। अबसे भी यदि सच्ची लगनसे काममें लग जांय तो अभी भी बहुत कुछ हो सकता है और भविष्य उज्ज्वल एवं आशापूर्ण बनाया जा सकता है।

श्री कामताप्रसादजी समाजके प्राचीन इतिहासज्ञ और एक सच्चे लग्नशील कार्यकर्ता हैं। उन्होंने 'विश्व-जैन मिशन' नामकी संस्था स्थापित और चालू करके एक बड़ी कमीको पूर्तिकी है। इस संस्थाने थोड़े ही समय-में थोड़े रुपयेमें ही बड़ा भारी काम किया है। पर समाज-की उदासीनताके कारण इसे जितनी आर्थिक मदद मिलनी चाहिए थी उसका शतांश भी नहीं मिल सका। यह संस्था दिगम्बर, श्वेताम्बरके भेद भावोंसे तथा दूसरे झगड़ोंसे मुक्त है। इसके कार्यको आगे बढ़ाना हम सभी जैनियोंका कर्त्तव्य तो है ही—हमें अपनी रक्षा और अपने तीर्थों, संस्थाओं और संस्कृतिकी रक्षाके लिए इस वर्तमान प्रचार युगमें तो अत्यन्त जरूरी और अनिवार्य हो गया है।

संसारमें युद्धकी विभीषिकाको समाप्त करना, हिंसा, खूनखराबीको दूर करना और सर्वत्र सुख शान्ति स्थापित करना हमारा ध्येय और कर्त्तव्य है—इसलिए भी हमें इस कल्याणकारी संस्थाकी हर प्रकारसे तन मन धनसे पूर्ण शक्ति एवं खुले दिलसे सहायता करना और कार्यको आगे बढ़ाना हमारा अपना पहला काम है और जरूरी है। आशा है कि हमारे जैन भाई इस समयानुकूल चेता-वनी (Timely warning) और इस प्रथम आव श्यकताकी ओर गम्भीर ध्यान देंगे।

अनन्तप्रसाद जैन संयोजक—
अ० विश्व जैन मिशन पटना

विवाह और दान

डा० श्रीचन्दजी जैन संगल सरसावा निवासी हाल एटाके सुपुत्र चि० महेशचन्द बी. ए. का विवाह-संस्कार इटावा निवासी साह टेकचन्द फतहचन्द जी जैन सुपुत्री चि० राधा रानीके साथ गत ता० ७ दिसम्बरका जैन विवाह विधिसे सानन्द सम्पन्न हुआ। इस विवाहकी खुशीमें डा० साहबने ३६१) रु० दानमें निकाले, जिनमेंसे ११०) रु० इटावाके जैन मन्दिरोंको (अलावा छत्र-चँवरादि सामानको) दिये गये, शेष २५१) रु० निम्न जैन संस्थाओं तथा मन्त्रों-को भेंट किये गये :—

२०१) वीरसेवामन्दिर सरसावा-दिल्ली, जिसमें ५०) रु० 'अनेकान्त' की सहायतार्थ शामिल हैं।

३५) दूसरी संस्थाएँ—श्री महावीरजी अतिशयक्षेत्र, स्याद्वाद महाविद्यालय काशी, ऋषभब्रह्मचर्याश्रम मथुरा, उ० प्रा० दि० गुरुकुल हस्तिनागपुर, बाहुबलि ब्रह्मचर्याश्रम बाहुबली (कोल्हापुर), जैन कन्या पाठशाला सरसावा समन्तभद्र विद्यालय जैन अनाश्रम देहली, प्रत्येक को ५) रुपये।

१५) अनेकान्त मित्र दूसरे पत्र—जैन मित्र, जैन सन्देश, अहिंसावाणी, प्रत्येक को ५) रुपये।

वीरसेवामन्दिरको जो २०१) रुपयाकी सहायता प्राप्त हुई है उसके लिये डाक्टर साहब धन्यवादके पात्र हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारी तीर्थ यात्राके संस्मरण

(गत किरण छः से आगे)

कोल्हपुर दक्षिण महाराष्ट्रका एक शक्तिशाली नगर रहा है इस नगरका दूसरा नाम क्षुल्लकपुर शिलालेखोंमें उल्लिखित मिलता है। कोल्हापुरका अतीत गौरव कितना समृद्ध एवं शक्ति सम्पन्न रहा है इसकी कल्पना भी आज एक पहेली बना हुआ है। कोल्हापुर एक अच्छी रियासत थी जो अब बम्बई प्रान्तमें शामिल कर दी गई है। यह नगर 'पंचगंगा' नदीके किनारे पर बसा हुआ है। और आज भी समृद्ध-सा लगता है। परन्तु कोल्हापुर स्टेटके मूर्ति और मन्दिरोंके वे पुरातन खण्डहरात तथा साम्प्रदायिक उथल-पुथल रूप परिवर्तन हृदयमें एक टीस उत्पन्न किये बिना नहीं रहते, जो समय-समय पर विद्यार्थियों द्वारा उत्पातादिके विरोध स्वरूप किए गए हैं। कोल्हापुर स्टेटमें कितने ही कलापूर्ण दिगम्बरीय मन्दिर शिव या विष्णु मंदिर बना दिये गए हैं। और कितने ही मन्दिर और मूर्तियाँ नष्ट-भ्रष्ट करदी गई हैं। कोल्हापुर कितना प्राचीन स्थान है इसका कोई प्रमाणिक उल्लेख अथवा इतिवृत्त मेरे अवलोकन में नहीं आया। परन्तु सन् १८८० में एक प्राचीन बड़े स्तूपके अन्दर एक पिटारा प्राप्त हुआ था, जिसमें ईस्वीपूर्व तृतीय शताब्दीके मौर्यसम्राट् अशोकके समयके अक्षर ज्ञात होते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कोल्हापुर एक प्राचीन स्थल है।

इस राज्यकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कोल्हापुर राज्यमें छत्तीस हजार जैन खेतिहर (कृषक) हैं, जो अपनी स्त्रियोंके साथ खेतीका कार्य करते हैं। ये खेतिहर अपने धर्मके सुदृढ़ उपासक और नियमोंके संपालक हैं, तथा बड़े ही ईमानदार हैं। वह अपने झगड़ोंको अदालतोंमें बहुत ही कम ले जाते हैं। इतना ही नहीं किन्तु अपराध बनजाने पर भी वे अपना निपटारा आप ही कर लेते हैं। वे प्रकृतितः भद्र और साहसी एवं परिश्रमी हैं, उन्हें अपने धर्मसे विशेष प्रेम है। कोल्हापुर राज्यके आस-पास स्थानोंमें जैनियोंने अनेक मन्दिर बनवाए हैं जिनमेंसे कितने ही मन्दिर आज भी मौजूद हैं। यहाँ पर शक संवत् १०५८ (विक्रम सम्वत् ११९३) से लेकर शक सम्वत् ११-५८ (विक्रम सम्वत् १२९३) तकके उत्कीर्ण किये हुए कई शिलालेख पाये जाते हैं, जो जैनियोंके गत गौरवके परिचायक हैं। उनसे उनकी धार्मिक भावनाका भी संकेत मिलता है। ये शिलालेख, मूर्तिलेख मन्दिर और प्रशस्तियाँ आदि सब पुरातन सामग्री जैनियोंके अतीत गौरवकी स्मृति स्वरूप हैं। पर यह बड़े खेदके साथ लिखना पड़ता है कि कोल्हापुर राज्यके कितने ही मन्दिरों और धार्मिक स्थानों पर वैष्णव-सम्प्रदायका कब्जा है अनेक मन्दिरोंमें शिवकी पिण्डी रख दी गई है। ऐसा उपद्रव कब हुआ इसका कोई इतिवृत्त मुझे अभीतक ज्ञात नहीं हो सका। कोल्हापुरसे ५ मील अलटाके पास पूर्वकी ओर एक प्राचीन जैन कालिज (Jain College) था जिस पर ब्राह्मणोंने अधिकार कर लिया है।

इसी तरह अंबाबाईका मन्दिर, नवग्रह मन्दिर और शेषशायी मन्दिर ये तीनों ही मन्दिर प्रायः किसी समय जैनियोंकी पूजाकी वस्तु बने हुए थे। इनमेंसे अंबाबाईका मन्दिर पद्मावती देवीके लिए बनवाया गया था। कोल्हापुरके उपलब्ध मन्दिरोंमें यह मन्दिर सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण है। यह मंदिर पुराने शहरके मध्यमें है। और कृष्णपाषाणका दो खनका बना हुआ है। यहांके निवासी जैनीलोग इस मन्दिरको अपना मन्दिर बतलाते हैं। इतना ही नहीं; किन्तु मन्दिरकी भीतों और गुंबजों पर बहुतसी नग्न मूर्तियां और लेख अब भी अंकित हैं, जिनसे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि यह मन्दिर जैन संघका है। उक्त मंदिरोंके पाषाण स्थानीय नहीं हैं किन्तु वे दूसरे स्थानोंसे लाकर लगाये गये हैं। उनमें कलात्मक खुदाईका काम किया हुआ है, जो दर्शकको अपनी ओर आकृष्ट किए बिना नहीं रहता।

कोल्हापुरके आस-पास बहुतसी खण्डित जैनमूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। मुसलमान बादशाहोंने १३वीं १४वीं शताब्दीमें अनेक जैनमन्दिर तोड़े और मूर्तियोंको खंडित किया। जिससे उनका यश सदाके लिए कलंकित हो गया। जब जैन लोग ब्राह्मपुरी पर्वत पर अंबाबाईका मंदिर बनवा रहे थे। उसी समय राजा जयसिंहने अपना एक [illegible] भी बनवाया था। कहा जाता है कि यह सभा कोल्हापुर[illegible]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पश्चिम ६ मील दूर बीडनामक स्थानपर किया करता था ।

ईसाकी १२वीं शताब्दीमें कोल्हापुरमें कलचूरियोंके साथ जिन्होंने कल्याणके चालुक्योंको पराजित कर दक्षिण देशपर अधिकार करलिया था। चालुक्यराजाओंके साथ शिलाहार राजाओंका एक युद्ध हुआ था। उस समय सन् ११७६ (विक्रम सं० १३१४) से १२०६ (वि० सं० १३-१४ में शिलाहारराजा भोज द्वितीयने कोल्हापुरको अपनी राजधानी बनाया था। और बहमनी राजाओंके वहाँ आने तक कोल्हापुरमें उन्हींका राज्य रहा।

इस प्रदेशपर अनेक राजवंशोंने—अश्वभृत्य, कदम्ब, राष्ट्रकूट, चालुक्य, और शिलाहार राजाओंने—राज्य किया है। चालुक्यराजाओंसे कोल्हापुर राज्य शिलाहार राजाओं ने छीन लिया था। १३वीं शताब्दीमें शिलाहार नरेशोंका बल अधिक बढ़ गया था, इसीसे उन्होंने अपने राज्यका यथेष्ट विस्तार भी किया। ये सब राजा जैनधर्मके उपासक थे। इन राजाओंमें सिंह, भोज, बल्लाल, गंडरादित्य, विजयादित्य और द्वितीय भोज नामके राजा बड़े पराक्रमी और वीर हुए हैं जिन्होंने अनेक मंदिर बनवाए और उनकी पूजादिके लिए गांव और जमीनोंका दान भी दिया है!

कोल्हापुरके 'आजरिका' नामक स्थानके महामण्डलेश्वर गण्डरादित्यदेवद्वारा निर्मापित त्रिभुनतिलक नामक चैत्यालयमें शक सं० ११२७ (वि० स० १२६२) में मूलसंघके विद्वान मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवके द्वारा दीक्षित सोमदेव मुनिने शब्दार्णवचन्द्रिका नामक वृत्ति रची थी, जो प्रकाशित हो चुकी है।

शिलाहार राजा विजयादित्यके समयका एक शिला लेख वमनी ग्राममें शक सम्वत् १०७३ वि० सं० १२०८ का प्राप्त हुआ है, जो एपिग्राफिका इंडिकाके तृतीयभागमें मुद्रित हुआ है, यह लेख ४४ लाइनका पुरानी कनड़ी संस्कृत मिश्रित भाषामें उत्कीर्ण किया हुआ है, जिसमें बतलाया गया है कि राजाविजयादित्यने चोडहोर—कामगावुन्द नामक ग्रामके पार्श्वनाथके दिगम्बर जैन मन्दिरकी अष्टद्रव्यसे पूजा व मरम्मतके लिये नावुक गेगोल्ला जिलेके मूदलूर ग्राममें एक खेत और एक मकान श्रीकुन्दकुन्दान्वयी श्रीकुलचन्द्रमुनिके शिष्य श्रीमाघनन्दिसिद्धांत देवके शिष्य श्रीअर्हनन्दि सिद्धान्तदेवके चरण धोकर दान दिया।

कोल्हापुरसे उत्तरमें दस मील दूर वर्ती एक नगर है जिसका नाम वदगांव है। यहां एक जैन मन्दिर है। जिसे आदप्पा भग सेठीने सन् १६६६ में चालीस हजार रुपया खर्च करके बनवाया था।

इसी तरह कोल्हापुर स्टेटमें और भी अनेक ग्रामोंमें प्राचीन जैन मन्दिरोंके बनाये जानेके समुल्लेख प्राप्त हो सकते हैं। कोल्हापुर और उसके आस-पासमें कितनेही शिलालेख और मूर्तिलेख हैं जिनका फिर कभी परिचय कराया जावेगा।

इस नगरमें चार शिखर बंद मंदिर हैं और तीन चैत्यालय हैं। दिगम्बर जैनियोंकी गृह संख्या दिगम्बर जैन डायरेक्टरीके अनुसार २०१ और जन संख्या १०४६ है। वर्तमानमें उक्त संख्यामें कुछ हीनाधिकता या परिवर्तन होना सम्भव है। शहरमें यात्रियोंके ठहरनेके लिये दो धर्मशालाएँ हैं जो जैन मन्दिरोंके पास ही है । एक दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस भी है, उसमें भी यात्रियोंको ठहरनेकी सुविधा हो जाती है।

जैन समाजके सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् डाक्टर ए. एन. उपाध्ये एम. ए. डी. लिट् उक्त जैन बोर्डिङ्ग हाउसमें ही रहते हैं। आप स्थानीय राजाराम कालिजमें प्राकृत और अर्धमागधीके अध्यापक हैं । बड़े ही मिलनसार और सहृदय विद्वान हैं, जैन साहित्य और इतिहासके मर्मज्ञ, सुयोग्य विचारक, लेखक तथा अनेक ग्रन्थोंके सम्पादक हैं। आप अध्यापन कार्यके साथ-साथ साहित्य सेवामें अपने जीवनको लगा रहे हैं । श्रीमुख्तार साहब और मैंने आपके यहां ही भोजन किया था। आप उस समय अन्य कार्यमें अत्यन्त व्यस्त थे, फिरभी आपने चर्चाके लिये समय निकाला यह प्रसन्नता की बात है। आपसे ऐतिहासिक चर्चा करके बड़ी प्रसन्नता हुई। समाजको आपसे बड़ी आशा है। आप चिरायु हों यही हमारी मंगल कामना है।

कोल्हापुरमें भट्टारकीय एक मठ भी है, और भट्टारकजी भी रहते हैं। उनके शास्त्रभंडारमें अनेक ग्रन्थ हैं। अभी उनकी सूची नहीं बनी है । केशववर्णीकी गोम्मटसारकी कर्नाटकटीका इसी शास्त्रभंडारमें सुरक्षित है, और भी कई ग्रन्थोंकी प्राचीन प्रतियां अन्वेषण करने पर इस भंडार में मिलेंगी। यहांका यह मठ प्राचीन समयसे प्रसिद्ध है। यहां पर पं० आशाधरजीके शिष्य वादीन्द्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशालकीर्तिभी रहे हैं। कोल्हापुरसे चलकर हम लोग स्तवनिधि पहुँचे।

स्तवनिधि दक्षिण प्रांतका एक सुप्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है। यहां चार मन्दिर व एक मानस्तम्भ है। मन्दिरके पीछेके अहातेकी दीवाल गिर गई है जिसके बनाये जानेकी आवश्यकता है। यहां लोग अन्य तीर्थक्षेत्रोंकी भांति मान-मनौती करनेके लिये आते हैं। उस समय एक बरात आई हुई थी, मन्दिरोंमें कोई खास प्राचीन मूर्तियां ज्ञात नहीं हुई। यह क्षेत्र कब और कैसे प्रसिद्धिमें आया। इसका कोई इतिवृत्त ज्ञात नहीं हुआ। हम लोग सानंद यात्रा कर बेलगांव और धारवाड होते हुए हुबली पहुँचे। और हुबलीसे हरिहर होते हुए हमलोग द्रावणगिरि पहुँचे। सेठ जीकी नूतन धर्मशालामें ठहरे। धर्मशालामें सफाई और पानीकी अच्छी व्यवस्था है। नैमित्तिक क्रियाओंसे निवृत्त होकर मंदिरजीमें दर्शन करने गये। यह मंदिर अभी कुछ वर्ष हुए बनकर तय्यार हुआ है। दर्शन-पूजनादि करके भोजनादि किया और रातको यहां ही आराम किया, और सबेरे चारबजे यहांसे चलकर एक बजेके करीब आर-सीकेरी पहुँचे, वहाँ स्नानादिसे निवृत्त हो मन्दिरजीमें दर्शन किये। पार्श्वनाथकी मूर्ति बड़ी ही मनोज्ञ है। एक शिला-लेख भी कनाड़ी भाषामें उत्कीर्ण किया हुआ है। यहां समय अधिक हो जानेसे मीठे पानीके नल बंद हो चुके थे, अतः खारा पानीका ही उपयोग करना पड़ा। और भोज-नादिसे निवृत्त हो कर ३ बजेके करीब हमलोग चन्नराय पट्टनके लिए चलदिये। और ७॥ बजेके करीब चन्नराय पट्टन पहुँच गए। और चंन्नराय पट्टनसे ८॥ बजे चलकर ९ बजेके करीब श्रवणबेल्गोल (श्वेतसरोवर) पहुँच गए, रास्ते-में चलते समय श्रवणबेल्गोल जैसे २ समीप आता जाता था। उस लोकप्रसिद्धमूर्तिका दूरसे ही भव्य दर्शन होता जाता था। और गोम्मटेश्वर की जयके नारोंसे अकाश गूंज उठता था रास्तेका दृश्य बड़ाही सुहावना प्रतीत होता था। और मूर्तिके दूरसे ही दर्शन कर हृदय गद्‌गद् हो रहा था। सभीके भावोंमें निर्मलता, भावुकता और मूर्तिके समीपमें जाकर दर्शन कर अपने मानवजीवनको सफल बनानेकी भावना अंतरमें स्फूर्ति पैदा कर रही थी, कि इतनेमें श्रवण बेलगोल आ गया। और मोटर अपने निश्चित स्थान पर रुकगई। और सभी सवारियाँ ग म्मट-देवकी जयध्वनिके साथ मोटरसे नीचे उतरीं। और यही निश्चय हुआ कि पहले ठहरनेकी व्यवस्था करलें बादमें सब कार्योंसे निश्चित होकर यात्रा करें। अतः प्रयत्न करने पर गाँवमें ही एक मुसलमानका बड़ा मकान सौ रुपयेके किरायेमें मिल गया और हमलोगोंने ११ बजे तक सामानआदिकी व्यवस्थासे निश्चिंत होकर स्थानीय मन्दिरोंके दर्शनकर आराम किया। क्रमशः परमानन्द जैन

विवाह और दान

श्रीलाला राजकृष्णजी जैनके लघु भ्राता लाला हरिश्चन्द्रजी जैनके सुपुत्र बाबू सुरेशचन्द्रका विवाह मथुरा निवासी रमणलाल मोतीलालजी सोरावाओंकी सुपुत्री सौ० सुशीला कुमारीके साथ जैन विधिसे सानन्द सम्पन्न हुआ। वर पक्षकी ओरसे १०००) का दान निकाला गया, जिसकी सूची निम्न प्रकार है :—

१०१) वीर सेवा मन्दिर, जैन सन्देश, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, मथुरा, अग्रवाल कालेज मथुरा अग्रवाल कालेज मथुरा, अग्रवाल कन्या पाठशाला मथुरा प्रत्येक को एक सौ एक।

५१) वाली संस्थाएं स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस, उदासीनाश्रम ईसरी, अम्बाला कन्या पाठशाला, समन्द्रभद्र विद्यालय

२५) जैन महिलाश्रम, देहली। अग्रवाल धर्मार्थ औषधालय, मथुरा, गौशाला मथुरा प्रत्येक को २५)

२१) मन्दिरान मथुरा, जयसिंहपुरा, वृन्दावन चौरासी, घिया मंडी, और घाटी। जैन अनाथाश्रम देहली। आचार्य नमि सागर औषधालय देहली हर एक को इक्कीस।

११) वाली संस्थाएं और पद जैन बाला विश्राम आरा, मुमुक्षु महिलाश्रम महावीर जी, जैनमित्र सूरत।

७) परिन्दोंका हस्पताल, लालमन्दिर, देहली।

५) अनेकान्त, जैन महिलादर्श, अहिंसा, वीर, जैन गजट देहली, प्रत्येक को पांच। ४) मनियाडर फीस।

वीरसेवामन्दिरको जो १०१) रुपया बिल्डिंग फंडमें और अनेकान्त को ५) रुपया जो सहायतार्थ प्रदान किये हैं। उसके लिये दातार महोदय धन्यवादके पात्र हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य परिचय और समालोचन

१ तीर्थंकर वर्द्धमान—लेखक श्री रामचन्द्रजी रामपुरिया बी. कॉम बी. एल.। प्रकाशक, हम्मीरमल पूनमचन्द रामपुरिया, सुजानगढ़ (बीकानेर)। पृष्ठ संख्या ४७०। मूल्य सजिल्द प्रतिका ५) रुपया।

प्रस्तुत पुस्तकका विषय उसके नामसे ही स्पष्ट है। इस पुस्तकमें तीर्थंकर वर्द्धमानका श्वेताम्बरी मान्यतानुसार परिचय दिया गया है। इस पुस्तकके दो भाग अथवा खण्ड हैं। जिनमेंसे प्रथममें महावीरका जीवन परिचय है और दूसरेमें उत्तराध्ययनादि सूत्र-ग्रंथोंपरसे उपयोगी विषयोंका संकलन सानुवाद दिया गया है और उन्हें शिक्षापद, निर्ग्रन्थपद, दर्शनपद और क्रान्तिपदरूप चारविभागोंमें यथाक्रमविभाजित करके रक्खा है। इन दोनोंमें जो सामग्री दी गई है वह उपयोगी है।

परन्तु यह खास तौरसे नोट करने लायक है कि तीर्थंकर वर्द्धमानका जीवन-परिचय अपनी साम्प्रदायिक मान्यतानुसार ही दिया गया है। उसमें कोई नवीनता मालूम नहीं होती। यदि प्रस्तुत ग्रन्थमें भगवान महावीरके जीवनको असाम्प्रदायिक रूपसे रक्खा जाता तो यह अधिक सम्भव था कि उससे पुस्तक उपयोगी ही नहीं होती, किंतु असाम्प्रदायी जनोंके लिए भी पठनीय और संग्रहणीय भी हो जाती। पुस्तककी प्रस्तावना बाबू यशपालजीने लिखी है।

फिर भी श्रीचन्द्रजी रामपुरियाने उक्त पुस्तकको सरल और उपयोगी बनानेका भरसक प्रयत्न किया है। इसके लिए वे बधाईके पात्र हैं। पुस्तककी छपाई और गेटअप, सुन्दर है।

२ महावीर वाणी—सम्पादक, पं वेचरदासजी दोशी, अहमदाबाद। प्रकाशक, भारत जैन महामण्डल वर्धा। पृष्ठ संख्या सब मिला कर २७०, साइज छोटा, मूल्य सवा दो रुपया।

उक्त ग्रन्थका विषय उसके नामसे स्पष्ट है प्रस्तुत पुस्तक श्वेताम्बरीय आगम ग्रन्थोंपरसे उपयोगी विषयोंका चयनकर उन्हें सानुवाद दिया गया है। और पीछेसे उनका प्रथम परिशिष्टमें संस्कृत अनुवाद भी दे दिया गया है। अबकी बार समुद्धृत वाक्योंके नीचे उस ग्रन्थका नाम मय उद्देशादिके दे दिया गया है। प्रस्तावना डाक्टर भगवान दासजीने लिखी है। छपाई-सफाई अच्छी है।

कुण्डलपुर लेखक 'नीरज' जैन। प्रकाशक पं० मोहनलाल जैन शास्त्री, पुरानी चरहाई जबलपुर (मध्यप्रदेश) पृष्ठ संख्या ५८ मूल्य पांच आना।

प्रस्तुत पुस्तकमें 'नीरज' जीने ५२ लक्षित पद्योंमें कुण्डलपुर क्षेत्रका परिचय देते हुए वहां की भगवान् महावीर की उस सातिशय मूर्तिका परिचय दिया है। कविता सुन्दर एवं सरल है। और पढ़नेमें स्फूर्ति दायक है। कविता के निम्न पद्योंको देखिये जिनमें कविने मूर्ति भंजक औरंगजेब की मनोभावना का, जो टाकीसेकर मूर्तिके भंग करने का प्रयत्न करने वाला था—

२६

सबसे आगे औरंगजेब, करमें टाँकी लेकर आया।
पर जाने क्योंकर अकस्मात् उसका तन औ' मन घबराया

२७

वह वीतराग छवि निर्निमेष, अब भी वैसी मुस्काती थी
थी अटल शाँति पर लगती थी-उसको उपदेश सुनाती थी

२८

सुन पड़ा शाहके कानोंमें, मिट्टीके पुतले सोच जरा,
यह अहङ्कार, धनधान्य सभी-कुछ,रह जावेगा यहीं धरा

२९

'जीवनकी धारामें अब भी, तू परिवर्तन ला सकता है
अब भी अवसर है अरे मूढ़,तू 'मानव'कहला सकता है

३०

सुनकर कुछ चौंका बादशाह, मस्तक भन्ना या सारा
अब तकके कृत्यों पर उसके, मनने उसको ही धिक्कारा

३१

यह भ्रम था अथवा सपना था ? या मेरीही मतिभूलीथी
प्रतिमा कुछ बोली नहीं, किन्तु-यह सदा-गैर मामूलीथी।

पुस्तक प्रकाशकसे मंगाकर पढ़ना चाहिये।

—परमानन्द शास्त्री

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशालकीर्तिभी रहे हैं। कोल्हापुरसे चलकर हम लोग स्तवनिधि पहुँचे।

स्तवनिधि दक्षिण प्रांतका एक सुप्रसिद्ध अतिशय क्षेत्र है। यहां चार मन्दिर व एक मानस्तम्भ है। मन्दिरके पीछेके अहातेकी दीवाल गिर गई है जिसके बनाये जानेकी आवश्यकता है। यहां लोग अन्य तीर्थक्षेत्रोंकी भांति मान-मनौती करनेके लिये आते हैं। उस समय एक बरात आई हुई थी, मन्दिरोंमें कोई खास प्राचीन मूर्तियां ज्ञात नहीं हुई। यह क्षेत्र कब और कैसे प्रसिद्धिमें आया। इसका कोई इतिवृत्त ज्ञात नहीं हुआ। हम लोग सानंद यात्रा कर बेलगांव और धारवाड होते हुए हुबली पहुँचे। और हुबलीसे हरिहर होते हुए हमलोग द्रावणगिरि पहुँचे। सेठ जीकी नूतन धर्मशालामें ठहरे। धर्मशालामें सफाई और पानीकी अच्छी व्यवस्था है। नैमित्तिक क्रियाओंसे निवृत्त होकर मंदिरजीमें दर्शन करने गये। यह मंदिर अभी-कुछ वर्ष हुए बनकर तय्यार हुआ है। दर्शन-पूजनादि करके भोजनादि किया और रातको यहां ही आराम किया, और सबेरे चारबजे यहांसे चलकर एक बजेके करीब आर-सीकेरी पहुँचे, वहाँ स्नानादिसे निवृत्त हो मन्दिरजीमें दर्शन किये। पार्श्वनाथकी मूर्ति बड़ी ही मनोज्ञ है। एक शिला-लेख भी कनाड़ी भाषामें उत्कीर्ण किया हुआ है। यहां समय अधिक हो जानेसे मीठे पानीके नल बंद हो चुके थे, अतः खारा पानीका ही उपयोग करना पड़ा। और भोज-नादिसे निवृत्त हो कर ३ बजेके करीब हमलोग चन्नराय पट्टनके लिए चलदिये। और ७॥ बजेके करीब चन्नराय पट्टन पहुँच गए। और चंन्नराय पट्टनसे ८॥ बजे चलकर ९ बजेके करीब श्रवणबेल्गोल (श्वेतसरोवर) पहुँच गए, रास्ते-में चलते समय श्रवणबेल्गोल जैसे २ समीप आता जाता था। उस लोकप्रसिद्धमूर्तिका दूरसे ही भव्य दर्शन होता जाता था। और गोम्मटेश्वर की जयके नारोंसे अकाश गूंज उठता था रास्तेका दृश्य बड़ाही सुहावना प्रतीत होता था। और मूर्तिके दूरसे ही दर्शन कर हृदय गद्‌गद् हो रहा था। सभीके भावोंमें निर्मलता, भावुकता और मूर्तिके समीपमें जाकर दर्शन कर अपने मानवजीवनको सफल बनानेकी भावना अंतरमें स्फूर्ति पैदा कर रही थी, कि इतनेमें श्रवण बेलगोल आ गया। और मोटर अपने निश्चित स्थान पर रुकगई। और सभी सवारियाँ गोम्मट-देवकी जयध्वनिके साथ मोटरसे नीचे उतरीं। और यही निश्चय हुआ कि पहले ठहरनेकी व्यवस्था करलें बादमें सब कार्योंसे निश्चित होकर यात्रा करें। अतः प्रयत्न करने पर गाँवमें ही एक मुसलमानका बड़ा मकान सौ रुपयेके किरायेमें मिल गया और हमलोगोंने ११ बजे तक सामानआदिकी व्यवस्थासे निश्चिंत होकर स्थानीय मन्दिरोंके दर्शनकर आराम किया। क्रमशः परमानन्द जैन

विवाह और दान

श्रीलाला राजकृष्णजी जैनके लघु भ्राता लाला हरिश्चन्द्रजी जैनके सुपुत्र बाबू सुरेशचन्द्रका विवाह मथुरा निवासी रमणलाल मोतीलालजी सोंरावाओंकी सुपुत्री सौ० सुशीला कुमारीके साथ जैन विधिसे सानन्द सम्पन्न हुआ। वर पक्षकी ओरसे १०००) का दान निकाला गया, जिसकी सूची निम्न प्रकार है :—

१०१) वीर सेवा मन्दिर, जैन सन्देश, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, मथुरा, अग्रवाल कालेज मथुरा अग्रवाल कालेज मथुरा, अग्रवाल कन्या पाठशाला मथुरा प्रत्येक को एक सौ एक।

५१) वाली संस्थाएं स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस, उदासीनाश्रम ईसरी, अम्बाला कन्या पाठशाला, समन्द्रभद्र विद्यालय

२५) जैन महिलाश्रम, देहली। अग्रवाल धर्मार्थ औषधालय, मथुरा, गौशाला मथुरा प्रत्येक को २५)

२१) मन्दिरान मथुरा, जयसिंहपुरा, वृन्दावन चौरासी, घिया मंडी, और घाटी। जैन अनाथाश्रम देहली। आचार्य नमि सागर औषधालय देहली हर एक को इक्कीस।

११) वाली संस्थाएं और पद जैन बाला विश्राम आरा, मुमुक्षु महिलाश्रम महावीर जी, जैनमित्र सूरत।

७) परिन्दोंका हस्पताल, लालमन्दिर, देहली।

५) अनेकान्त, जैन महिलादर्श, अहिंसा, वीर, जैन गजट देहली, प्रत्येक को पांच। ४) मनियाडर फीस।

वीरसेवामन्दिरको जो १०१) रुपया बिल्डिंग फंडमें और अनेकान्त को ५) रुपया जो सहायतार्थ प्रदान किये हैं। उसके लिये दातार महोदय धन्यवादके पात्र हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. D. 211

अनेकान्तके संरक्षक और सहायक

संरक्षक

१५००) बा० नन्दलालजी सरावगी, कलकत्ता
२५१) बा० छोटेलालजी जैन सरावगी ,,
२५१) बा० सोहनलालजी जैन लमेचू ,,
२५१) ला० गुलजारीमल ऋषभदासजी ,,
२५१) बा० ऋषभचन्द (B.R.C. जैन ,,
२५१) बा० दीनानाथजी सरावगी ,,
२५१) बा० रतनलालजी झांझरी ,,
२५१) बा० बल्देवदासजी जैन सरावगी ,,
२५१) सेठ गजराजजी गंगवाल ,,
२५१) सेठ सुआलालजी जैन ,,
२५१) बा० मिश्रीलाल धर्मचन्दजी ,,
२५१) सेठ मांगीलालजी ,,
२५१) सेठ शान्तिप्रसादजी जैन ,,
२५१) बा० विशनदयाल रामजीवनजी, पुरलिया
२५१) ला० कपूरचन्द धूपचन्दजी जैन, कानपुर
२५१) बा० जिनेन्द्रकिशोरजी जैन जौहरी, देहली
२५१) ला० राजकृष्ण प्रेमचन्दजी जैन, देहली
२५१) बा० मनोहरलाल नन्हेंमलजी, देहली
२५१) ला० त्रिलोकचन्दजी, सहारनपुर
२५१) सेठ छदामीलालजी जैन, फीरोजाबाद
२५१) ला० रघुवीरसिंहजी, जैनावाच कम्पनी, देहली
२५१) रायबहादुर सेठ हरखचन्दजी जैन, रांची
२५१) सेठ वधीचन्दजी गंगवाल, जयपुर

सहायक

१०१) बा० राजेन्द्रकुमारजी जैन, न्यू देहली
१०१) ला० परसादीलाल भगवानदासजी पाटनी, देहली
१०१) बा० लालचन्दजी बी० सेठी, उज्जैन
१०१) बा० घनश्यामदास बनारसीदासजी, कलकत्ता
१०१) बा० लालचन्दजी जैन सरावगी ,,
१०१) बा० मोतीलाल मक्खनलालजी, कलकत्ता
१०१) बा० बद्रीप्रसादजी सरावगी, ,,
१०१) बा० काशीनाथजी, ... ,,
१०१) बा० गोपीचन्द रूपचन्दजी ,,
१०१) बा० धनंजयकुमारजी ,,
१०१) बा० जीतमलजी जैन ,,
१०१) बा० चिरंजीलालजी सरावगी ,,
१०१) बा० रतनलाल चांदमलजी जैन, रांची
१०१) ला० महावीरप्रसादजी ठेकेदार, देहली
१०१) ला० रतनलालजी मादीपुरिया, देहली
१०१) श्री फतेहपुर जैन समाज, कलकत्ता
१०१) गुप्तसहायक, सदर बाजार, मेरठ
१०१) श्री शीलमालादेवी धर्मपत्नी डा०श्रीचन्द्रजी, एटा
१०१) ला० मक्खनलाल मोतीलालजी ठेकेदार, देहली
१०१) बा० फूलचन्द रतनलालजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० सुरेन्द्रनाथ नरेन्द्रनाथजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० वंशीधर जुगलकिशोरजी जैन, कलकत्ता
१०१) बा० बद्रीदास आत्मारामजी सरावगी, पटना
१०१) ला० उदयराम जिनेश्वरदासजी सहारनपुर
१०१) बा० महावीरप्रसादजी एडवोकेट, हिसार
१०१) ला० बलवन्तसिंहजी, हांसी जि० हिसार
१०१) कुँवर यशवन्तसिंहजी, हांसी जि० हिसार
१०१) सेठ जोखीराम बैजनाथ सरावगी, कलकत्ता
१०१) श्रीमती ज्ञानवतीदेवी जैन, धर्मपत्नी 'वैद्यरत्न' आनन्ददास जैन, धर्मपुरा, देहली
१०१) बाबू जिनेन्द्रकुमार जैन, सहारनपुर

अधिष्ठाता 'वीर-सेवामन्दिर'
सरसावा, जि० सहारनपुर

प्रकाशक—परमानन्दजी जैन शास्त्री १, दरियागंज देहली। मुद्रक—रूप-वाणी प्रिंटिंग हाउस २३, दरियागंज, देहली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org